आचार्य भिक्षु : जीवन-दर्शन

आचार्य महाप्रज्ञ

आचार्य भिक्षु : जीवन-दर्शन

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
लाडनूं ३४१ ३०६ (राज.)

© जैन विश्व भारती

संपादक :
आगम मनीषी मुनि दुलहराज

ISBN : 81-7195-052-3

ग्यारहवां संस्करण : २००६

मूल्य : १५ रुपये मात्र

टाईप सेटिंग : सर्वोत्तम प्रिण्ट एण्ड आर्ट

मुद्रक : भूमिका प्रिण्टर्स, दिल्ली-५३

प्रस्तुति

एक ऐसी आत्मा, जिसके आदि, मध्य और अन्त में आत्मा ही आत्मा है।

एक ऐसा संहनन, जिसके अणु-अणु में पराक्रम ही पराक्रम है।

एक ऐसा मस्तिष्क, जिसमें बुद्धि की प्रखरता और अनुभव की सघनता का समन्वय है।

एक ऐसी दृष्टि, जिसमें निश्चय और व्यवहार (पारमार्थिक सत्य और व्यावहारिक सत्य) दोनों का गुम्फन है।

इन सबका समुच्चय है आचार्य भिक्षु। उन्होंने जो कहा, वह आर्षवाणी बन गया। उन्होंने जो लिखा, वह शास्त्र बन गया। उन्होंने जो देखा, वह पंथ बन गया। उनकी अनुभव वाणी के कुछ बिन्दु प्रस्तुत पुस्तक में उल्लिखित हैं। इन्हें पढ़कर कोई भी व्यक्ति परोक्षानुभूति को प्रत्यक्षानुभूति में बदल सकता है। आचार्य तुलसी ने आचार्य भिक्षु को श्रद्धा और तर्क के आलोक में देखने की जो शक्ति दी है, उसका मूल्य सूरज की किसी भी किरण से कम नहीं है।

आचार्य महाप्रज्ञ

अनुक्रम

१.	जन्म और दीक्षा	१
२.	धर्मक्रांति और तेरापंथ की स्थापना	४
३.	मर्यादा और अनुशासन	११
४.	मौलिक स्थापनाएं	२०
५.	प्रेरक संस्मरण	२७
६.	जागरूक जीवन	३४
७.	अनशन और समाधिमरण	३९

१. जन्म और दीक्षा

जन्म कल्याणक

'भिक्षु' का जन्म सम्वत् १७८३ आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी मंगलवार, मूल नक्षत्र में हुआ।

आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को सर्वसिद्धा त्रयोदशी कहा जाता है। तदनुसार उन्हें अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति में पूर्ण सफलता मिली थी। अतः उनका सर्वसिद्धा त्रयोदशी के दिन जन्म होना उनके सफल भावी जीवन का पूर्व संकेत था।

जब 'भिक्षु' गर्भ में आए तब माता दीपांबाई को स्वप्न में सुन्दर बलवान् सिंह के दर्शन हुए।

'भिक्षु' के पिता का नाम शाह बल्लूजी और माता का नाम दीपांबाई था। उनके ताऊ का नाम सुखोजी और चाचा का नाम पेपोजी था। उनके पितामह का नाम पांचोजी था। भिक्षु दो भाई थे। बड़े भाई का नाम होलोजी था।

भिक्षु के माता-पिता जैन गच्छवासी सम्प्रदाय के अनुयायी बताये गए हैं। कुल-गुरु होने के नाते भिक्षु का आवागमन पहले गच्छवासी सम्प्रदाय के साधुओं के यहां था। बाद में वे पोतियाबंध सम्प्रदाय के अनुयायी बने। फिर उनको छोड़कर स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रुघनाथजी के अनुयायी हुए।

भिक्षु की शादी छोटी अवस्था में हो गई। पर गृहस्थ जीवन उन्हें बांध नहीं पाया। उनकी पत्नी सुगुनी बाई भी दीक्षा लेने के लिए उद्यत हुई। ब्रह्मचर्य की साधना के साथ-साथ दोनों ने एक अभिग्रह और अंगीकार कियाह्नजब तक प्रव्रज्या की अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी तब तक दोनों एकांतर (एक दिन छोड़कर एक दिन) उपवास करेंगे।

उस साधनाकाल में ही श्रीमती सुगुनी बाई का देहांत हो गया। पर भिक्षु

इस वियोग से दुःखी नहीं हुए अपितु और अधिक विरक्त हो गये। उन्होंने फिर से शादी करने का त्याग कर दिया और वे अपने आपको साधुत्व के लिए तैयार करने लगे।

लक्षण-सम्पन्न व्यक्तित्व

लक्षणह्लसम्पन्नता महानता की सूचक है। कोई व्यक्ति अंतर जगत् में महान् होता है तो बहिर्जगत् में भी उसकी महानता अभिव्यक्त होती है। बाहर से अभिव्यक्त महानता को देखकर भीतर की महानता को पहचानना सबके लिए आसान होता है।

भिक्षु भीतरी और बाहरीह्लदोनों महानताओं से सम्पन्न थे। उनके शरीर पर महानता के सूचक अनेक शुभ लक्षण विद्यमान थेह्ल

- दाएं पैर में ऊर्ध्वरेखा या पद्मरेखा
- दाएं हाथ में मत्स्यरेखा
- दाएं हाथ की कलाई के पास मणिबंध की तीन रेखाएं
- हाथ की दशों अंगुलियों पर चक्र
- ग्रीवा पर तीन लम्बी रेखाएं
- ललाट पर तीन लम्बी रेखाएं
- नाभि के पास स्वस्तिक का चिन्ह
- पेट पर ध्वजा का चिन्ह
- पेट पर तीन लंबी रेखाएं
- श्यामवर्ण, लम्बा और विशाल शरीर, लालनेत्र, हस्ति जैसी गति, प्रसन्न मुख-मुद्रा, लंबा ललाट।

ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी कीह्लये लक्षण बता रहे हैं कि इस व्यक्ति का नाम दो हजार वर्ष तक जनता के आकर्षण का केन्द्र बना रहेगा।

अंधविश्वास का मर्मोद्घाटन

भिक्षु गृहस्थ जीवन में भी संत का जीवन जीते थे। उनकी वैराग्य-साधना अद्भूत थी। उनकी अन्तर्दृष्टि जागृत थी। वे सत्य के लिए समर्पित थे। वे चमत्कार के भ्रमजाल में नहीं फंसते थे। उनका ग्राम कंटालिया (जिला-पाली) था। वहां किसी के घर चोरी हो गई। चोर का पता लगाने के लिए प्रयत्न शुरू

हुए। पार्श्ववर्ती बोरनदी ग्राम में एक कुम्हार रहता था। वह अंधा था। लोग मानते थेह्नउसके मुंह से देवता बोलता है। चोर का पता लगाने के लिए उसे बुलाया गया। कुम्हार आचार्य भिक्षु की समझ से परिचित था। वह उनके पास आया। औपचारिक बातें की। बातचीत के प्रसंग में उसने कहाह्नकल रात गांव में चोरी हो गई, आपको पता होगा? आपका संदेह किस पर है? भिक्षु उसकी ठग-विद्या को समाप्त करना चाहते थे। भिक्षु ने कहाह्नमेरा संदेह तो मजने पर है।

रात का समय। चोरी वाले घर पर अनेक लोगों का जमाव। सबके मन में रहस्योद्घाटन की जिज्ञासा। कुम्हार के शरीर में देवता का आवेश। वह आविष्ट मुद्रा में बोलाह्न'डाल दे रे, डाल दे! गहने डाल दे।' लोगों ने कहाह्न'ऐसे कौन डालेगा? आप चोर का नाम प्रकट करें।' कुम्हार ने आवेश की मुद्रा में कहाह्न'चोर है मजना। उसी ने गहने चुराए हैं।' पास में एक फकीर बैठा था। उसने कहाह्न'मजना तो मेरे बकरे का नाम है। वह क्या गहने चुराएगा?'

चमत्कार जनता के आक्रोश में बदल गया।

वैराग्य

भिक्षु के वैराग्य का बुआ को पता चला। बुआ ने कहाह्नभीखण! तू दीक्षा लेगा तो मैं पेट में कटारी खाकर मर जाऊंगी।

भिक्षु बुआ के इस कथन से विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहाह्नकटारी पूनी नहीं है, जिसे पेट में खाया जाए।

भिक्षु के इस कथन को सुनकर बुआ निरुत्तर हो गई।

भिक्षु के पिता शाह बलूजी इस संसार से चल बसे। मां दीपां बाई ने दीक्षा की अनुमति नहीं दी। आचार्य रुघनाथजी ने दीपां बाई से पूछाह्नतुम भिक्षु को दीक्षा लेने से मना क्यों कर रही हो? दीपां बाई ने कहाह्नजब यह गर्भ में था तब मैंने सिंह का सपना देखा था। यह राजा बनेगा। मैं इसे मुनि होने की आज्ञा कैसे दे सकती हूं? आचार्य रुघनाथजी ने कहाह्नमुनि राजा से बहुत बड़ा होता है। तुम्हारा पुत्र मुनिसिंह बने, इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है? आचार्य की यह बात मां दीपां के गले उतर गई। उन्होंने भिक्षु को दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दी। भीखणजी आचार्य रुघनाथजी के शिष्य बन गए।

२. धर्मक्रांति और तेरापंथ की स्थापना

धर्मक्रांति के बीज

भिक्षु ने स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रुघनाथजी के पास दीक्षित होकर आगमों का अध्ययन किया। उन्होंने आगमिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकालाह्नये प्रवृत्तियां साधुत्व की विराधनाएं हैंह्न

- आधाकर्मी (साधु के निमित्त बने हुए), स्थापित (साधु के निमित्त से स्थापित किए हुए) स्थानक का उपयोग किया जा रहा है।
- क्रीत (साधु के निमित्त से खरीदा हुआ) और नीरोग अवस्था में भी नित्यपिंड (प्रतिदिन एक घर से आहार) लिया जा रहा है।
- स्थानक में पुस्तकें छोड़कर विहार कर दिया जाता है। पीछे से उनकी प्रतिलेखना भी नहीं होती।
- पारिवारिक जनों की अनुमति के बिना ही दीक्षा दी जा रही है।
- विवेक शून्य और नासमझ स्त्री-पुरुषों को दीक्षा दी जा रही है।
- मर्यादा से अधिक उपधिह्नवस्त्र और पात्र रखे जा रहे हैं।
- जानबूझ कर दोष सेवन की स्थापना की जा रही है।
- मान्यता भी सही नहीं है तथा आचार भी सम्यक् नहीं है।

ये चिन्तन के बीज संत भिक्षु के मानस में चिरकाल तक पलते रहे और ये परिपक्व होकर धर्मक्रांति के बीज बन गए।

धर्मक्रांति के बीजों का प्रस्फुटन

वि० सं० १८१५ की घटना। राजनगर (मेवाड़) के श्रावकों के मन में 'आधाकर्मी (स्थानक) का मुनि सेवन करते हैं इत्यादि प्रश्न उठे। उन्होंने वन्दना छोड़ दी। आचार्य रुघनाथजी ने संत भिक्षु को उन्हें समझाने के लिए भेजा। उन्होंने श्रावकों के प्रश्न सुने, वे विचारणीय थे। पर अपने गुरु का वचन मान्य रखने के लिए उन्होंने श्रावकों को जैसे-तैसे समझा दिया।

श्रावक बोलेह्नहमारी शंका निर्मूल नहीं हुई पर आप वैरागी हैं, बुद्धिमान् हैं, आप पर हमें भरोसा है, इसलिए हम आपके प्रति नत हैं। कोई नियति की प्रेरणाह्नअकस्मात् संत भिक्षु के शरीर में भयंकर शीत ज्वर उतर आया। भयंकर थी उसकी वेदना। उस समय संत भिक्षु ने सोचाह्नमैंने उन श्रावकों को, जो सच्चे थे, झूठा ठहराया। यदि इस समय मेरी मौत आ जाए तो कैसी गति होगी?

संत भिक्षु ने संकल्प कियाह्नयदि ज्वर का प्रकोप शांत हो जाए तो मैं सही-सही प्ररूपणा करूंगा, फिर चाहे कोई राजी हो या नाराज। ज्वर तत्काल उतर गया। यह था एक महान् भविष्य का संकेत।

सही दिशा : सही प्रयत्न

राजसमंद की घटना है। संत भिक्षु ने शुद्ध आचार और विचार के पथ पर चलने का निश्चय कर लिया और अपना निश्चय श्रावकों को बता दिया। वे वहां से प्रस्थान कर आचार्य रुघनाथजी के पास आ रहे थे। वीरभाणजी तथा एक अन्य साधु आचार्य रुघनाथजी के पास आगे पहुंचे। संत भिक्षु ने निषेध किया था कि राजनगर के निश्चय की चर्चा मेरे आने से पूर्व आचार्य रुघनाथजी के पास न की जाए, पर वीरभाणजी अपने आपको रोक नहीं सके। आचार्य रुघनाथजी ने पूछाह्नराजनगर के श्रावक समझ गये? वीरभाणजी बोलेह्नश्रावक क्या, भीखणजी समझ गए। उन्होंने भीखणजी के निश्चय की बात उन्हें बता दी। आचार्य रुघनाथजी सारी बात सुन अप्रसन्न हो गए। कुछ दिनों बाद संत भिक्षु पहुंचे, वंदना की। उन्होंने सिर पर हाथ नहीं रखा। संत भिक्षु समझ गएह्नबात पहुंच गई। उन्हें कोई भय नहीं था। पर वे जो चाहते थे, उसमें विघ्न जरूर हुआ। उन्होंने विनम्रतापूर्वक गुरु को प्रसन्न किया। वे चाहते थेह्नमेरा निश्चय गुरु का निश्चय बन जाए तो सब काम ठीक हो जाए। उनका इस दिशा में प्रयत्न चालू हो गया।

विनम्र अनुरोध

संत भिक्षु ने आचार्य रुघनाथजी से कहाह्न'हमें पूजा-प्रतिष्ठा बहुत बार मिली है, अनेक जन्मों में मिली है। हम उसके लिए मुनि नहीं बने हैं। हम आत्म-कल्याण के लिए मुनि बने हैं। इसलिए पूजा-प्रतिष्ठा की दृष्टि हमारे सामने नहीं रहनी चाहिए।

- भगवान की आज्ञा के बाहर धर्म नहीं होता।
- एक ही करनी से पुण्य और पापह्नदोनों नहीं होते।
- मिश्र धर्म नहीं होता।

ये सिद्धांत आगम सम्मत हैं। हमारा किसी विषय में आग्रह नहीं होना चाहिए। हमने जिनवाणी के आधार पर घर छोड़ा है, उसी को प्रमाण मान कर निर्णय करें।'

'यदि सूत्र के आधार पर हमारे आचार और विचार का निर्णय होता है तो आप मेरे गुरु हैं, मैं आपका शिष्य हूं। आपके प्रति मेरे मन में उतना ही धर्मानुराग है जितना पहले था। मेरे मन में न कोई विरोध है और न कोई विद्रोह। यह कोई तात्कालिक निर्णय का विषय नहीं है, पर विषय है गंभीर चिन्तन का। इस पर हम लम्बे समय तक चिन्तन करेंगे।'

इस प्रकार उन्होंने अपने आचार्य को तत्त्व-चर्चा के लिए सहमत किया और विचार-मंथन का मार्ग खुल गया।

लंबे समय तक विचार-विमर्श चला, परंतु कोई अभीष्ट परिणाम नहीं निकला। अंत में संत भिक्षु ने संघ से पृथक् होकर आत्म-साधना करने का विचार किया।

अभिनिष्क्रमण

संत भिक्षु ने चैत्र शुक्ला नवमी (सं० १८१७) बगड़ी में अभिनिष्क्रमण किया। उनका पहला प्रवास-स्थल था जैतसिंह की छतरियां। जिस श्मशान भूमि में लोग अंतिम प्रवास करते हैं, उस श्मशान भूमि में संत भिक्षु ने पहला प्रवास किया।

आचार्य रुघनाथजी ने संत भिक्षु से कहाह्नयह दुःषम काल है। इसमें पूरी साधुता निभ नहीं सकती।

संत भिक्षु ने कहाह्नदुःषम काल का यह तात्पर्य नहीं है कि उसमें धर्म की पूर्ण साधना नहीं की जा सकती। भगवान् महावीर ने भी यही कहा हैह्नजो शिथिलाचारी और पुरुषार्थहीन होंगे, वे ही ऐसा कहेंगे कि इस काल में शुद्ध चरित्र नहीं पाला जा सकता।

आचार्य रुघनाथजी बोलेह्नभीखणजी! अभी पांचवां आरा है। इस काल में कोई दो घड़ी शुद्ध साधुपन पाल ले तो वह सर्वज्ञ हो जाए।

संत भिक्षु ने कहाह्नयदि दो घड़ी में ही सर्वज्ञता प्राप्त होती है तो इतने समय तक तो मैं श्वास बंद कर के भी रह सकता हूं।

नामकरण

वि० सं० १८१७ । जोधपुर की घटना। बाजार की एक दुकान में तेरह

भाई सामायिक, पौषध की आराधना कर रहे थे। दीवान फतहचंदजी सिंघी उधर से निकले। आश्चर्य के साथ उन श्रावकों को देखा और जिज्ञासा के स्वर में पूछाह्न'आप स्थानक को छोड़ यहां कैसे?'

श्रावकगण ने कहाह्न'हमारे गुरु संत भिक्षु हैं। उन्होंने स्थानक (साधु के लिए निर्मित स्थान) में रहना छोड़ दिया है।'

'क्यों छोड़ दिया?' सिंघीजी ने पूछा।

इस प्रश्न के उत्तर में श्रावकगण ने सारी बात विस्तार से बताई। सिंघीजी ने पूछाह्न'कितने साधु हैं?' उत्तर मिलाह्न'तेरा।'

पास में खड़ा एक सेवक कवि तत्काल एक दोहा बनाकर बोलाह्न

साध-साध रो गिलो करै, ते आप आप रो मंत।
सुणज्यो रे शहर रा लोकां! ए तेरापंथी तंत।।

संत भिक्षु के पास यह संवाद पहुंचा। वे तत्काल आसन छोड़ वन्दना की मुद्रा में बैठे और बद्धाञ्जली होकर बोलेह्नहे प्रभो! यह तेरापंथ।

प्रभो! यह पंथ तुम्हारा है, मैं इसका पथिक हूं।

इसका दूसरा अर्थ उन्होंने इस प्रकार कियाह्नजहां पांच महाव्रतों, पांच समितियों और तीन गुप्तियों की आराधना की जाती है, वह तेरापंथ है। कवि ने नामकरण किया संख्या के आधार पर, संत भिक्षु ने उसे स्वीकारा अपनी ममत्व-विसर्जन की साधना के स्तर पर।

धर्मक्रांति के सहयात्री

धर्मक्रांति के समय बारह साधु संत भिक्षु के साथ थेह्न

१. मुनि श्री थिरपालजी

२. मुनि श्री फतेहचंदजी

३. मुनि श्री हरनाथजी

४. मुनि श्री टोकरजी

५. मुनि श्री भारमलजी

६. मुनि श्री वीरभाणजी

७. मुनि श्री लिखमीचन्दजी

८. मुनि श्री बखतरामजी

९. मुनि श्री गुलाबजी

१०. मुनि श्री भारमलजी (द्वितीय)

११. मुनि श्री रूपचंदजी

१३. मुनि श्री पेमजी

संत भिक्षु ने अपने सहयात्रियों के साथ तत्त्व-चर्चा की। विचारों का तालमेल बिठाया। चातुर्मास सामने आ गया। आठ साधुओं के दो सिंघाड़ों में दो स्थानों पर चातुर्मास करवाये। विहार के समय आपने सबको निर्देश दियाह्नआषाढ़-शुक्ला पूर्णिमा के दिन तेरापंथ की दीक्षा स्वीकार करेंगे। चातुर्मास के बाद श्रद्धा और आचार के विषय में पुनः चिन्तन करेंगे। यदि विचार मिल गए तो सब साथ रहेंगे और यदि विचारों में अन्तर रहा तो हमारा सह-संबंध नहीं हो सकेगा।

आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा का दिन, केलवा गांव, भगवान् चन्द्रप्रभ का मन्दिर, अंधेरी ओरी, चातुमार्सिक प्रतिक्रमण और क्षमायाचना के बाद पूर्णिमा की चांदनी से धवलित आकाश, पुण्य वेला और शुभ मुहूर्त्त में संत भिक्षु ने अर्हत् की आज्ञा को शिरोधार्य कर सिद्धों के साक्ष्य से अपने सहवर्ती चार साधुओं के साथ तेरापंथ की दीक्षा स्वीकार की। ठीक उसी समय शेष आठ साधु भी अपने-अपने स्थान पर तेरापंथ में दीक्षित हो गए। संत भिक्षु उसी दिन से तेरापंथ के स्वयंभू आचार्य बन गए। उस वर्ष वर्षा भी अच्छी थी, फसल भी बहुत अच्छी हुई।

अंधेरी ओरी : प्रथम प्रवास

चन्द्रप्रभ भगवान् का मन्दिर। उसमें एक कोठरी, न प्रकाश और न हवा का प्रवेश। इसलिए उसे अंधेरी ओरी (अंधकारपूर्ण कोठरी) कहा जाता था। आषाढ़ शुक्ला १३ का दिन, संत भिक्षु वहां स्थित थे। मुनि भारमलजी उस समय तेरह वर्ष के थे। वे रात के समय परिष्ठापन करने के लिए बाहर गए। उस समय एक सर्प आया और उनके पैरों में लिपट गया। वे कायोत्सर्ग की मुद्रा में वहीं खड़े रह गए। उनके आने में विलम्ब हुआ जान संत भिक्षु बाहर आए। मुनि भारमलजी को मौन और शांत खड़े हुए देख कर बोलेह्नभीतर आ जाओ। मुनि भारमलजी बोलेह्नपैरों में सर्प लिपटा हुआ है, भीतर कैसे आऊं? संत भिक्षु सर्प को सम्बोधित कर बोलेह्नदेवानुप्रिय! अगर हमारे यहां रहने से आपको कष्ट होता हो तो हम अन्यत्र चले जायेंगे। इस प्रकार छोटे साधु के पैर में लिपटना कैसे उचित होगा? संत भिक्षु का यह वचन सुनते ही सर्प पैर की जकड़ को ढीला कर एक लकीर बनाते हुए चला गया। मुनि भारमलजी भीतर आ गए।

अर्ध रात्रि का समय। संत भिक्षु ध्यान की मुद्रा में बैठे थे। एक श्वेत वस्त्रधारी उन्हें आते दिखाई दिया। उसने कहाह्नआप समाधिपूर्वक यहां रहें। मैंने जो लकीर खींची है, उसकी स्वच्छता बनी रहे।

संत भिक्षु और उस दिव्य आत्मा के सम्पर्क की अनेक गाथाएं प्रचलित हैं। चातुर्मास का प्रवास सानन्द संपन्न हुआ। वह दिव्य आत्मा सदा उनकी सहयोगी बनी रही।

प्रथम चातुर्मास

आचार्य भिक्षु ने पहला चातुर्मास वि० सं० १८१७ केलवा में किया। उस समय आपके साथ चार साधु थेह्नहरनाथजी, टोकरजी, भारमलजी। एक साधु का नाम ज्ञात नहीं है। इस चातुर्मासिक प्रवास में केलवा के ठाकुर मोखमसिंहजी आचार्य भिक्षु के सम्पर्क में आए। आपकी साधना, तपस्या और तत्त्वज्ञान से प्रभावित होकर वे आपके भक्त बन गए।

गांव के सभी लोग आचार्य भिक्षु के विरोध में थे। न कोई श्रावक था, न अनुरागी और न कोई भक्त। जैसे-जैसे साधना की सौरभ फैलती गई वैसे-वैसे लोग सम्पर्क में आते गए और श्रद्धालु भक्त बनते गए। इसी चातुर्मास में पूरा गांव आपके प्रति श्रद्धानत हो गया। सबसे पहले वहां के कोठारी (चौरड़िया) परिवार के लोगों ने आचार्य भिक्षु के पास तत्त्व को समझा और उनके अनुयायी बने। उनमें से कुछ प्रमुख व्यक्ति ये थेह्न

१. मूणदासजी (केलवा ठिकाणे के प्रधान)।

२. भैरोंजी (सुप्रसिद्ध श्रावक शोभजी के पिता)।

३. केसोजी।

निराशा और मुनि युगल की अभ्यर्थना

विरोध का बवंडर और आक्रोश का तूफान। झंझावत से गुजरते-गुजरते एक बार संत भिक्षु का मन निराशा से भर गया। उन्होंने सोचाह्न'मेरे तत्त्व को कौन स्वीकारेगा? कौन श्रावक बनेगा? और कौन साधु बनेगा? चारों ओर गहरे अज्ञान का वातावरण है।'

वे व्यक्तिगत साधना के पथ पर चल पड़े। एकान्तर तप (एक दिन उपवास, एक दिन आहार) शुरू कर दिया। चिलचिलाती धूप में नदी की बालू में लेटकर आतापना लेने लगे। सहवर्ती साधुओं ने भी आचार्य भिक्षु का अनुगमन किया।

महीनों तक यह क्रम चलता रहा। एक दिन मुनि थिरपालजी और फतहचंदजी संत भिक्षु के सामने उपस्थित हुए। वे बद्धांजली होकर बोलेह्न'गुरुदेव! आप बुद्धिमान् हैं। आपमें क्षमता है। आप भगवान महावीर की वाणी की प्रभावना कर सकते हैं। आप शरीर को सुखाने वाली तपस्या का मार्ग न चुनें। वह हम करेंगे। आप धर्म का उद्योत करें। स्वयं तरें और जनता को तारें।'

मुनि युगल की प्रार्थना संत भिक्षु के अन्तःकरण को छू गई। निराशा में आशा का संचार हुआ। बादल छंट गये। सूर्य फिर अपनी हजार किरणों के साथ भूमण्डल को प्रकाशित करने लगा। न्याय और नीति का प्रकाश अज्ञान के सघन अन्धकार को चीर जन-जन के मानस में प्रतिष्ठित हो गया।

३. मर्यादा और अनुशासन

एक आचार्य का नेतृत्व

आचार्य भिक्षु ने वर्तमान की परिस्थितियों तथा साधु-संस्थाओं का गहरे में उतर कर अध्ययन किया। उन्होंने पायाह्न

ये साधु विवेकशून्य व्यक्तियों को मूंड लेते हैं। उनमें न विराग होता है, न तत्त्वज्ञान।

वे शिष्यों के लिए परस्पर झगड़ा करते हैं।

दूसरे के शिष्यों को फंटाकर अपना बनाने का प्रयास करते हैं।

उसमें शिष्यों का लोभ है। वे अपनी-अपनी शिष्य-शाखा को बढ़ाना चाहते हैं। इस स्थिति में वैराग्य घट रहा है, भेख ऊपर उठ रहा है।

उन्हीं के शब्दों मेंह्न

वैराग घट्यो नै भेख बधियो, हाथ्यां रो भार गधा लदियो।
गधा थाक्या बोझ दियो रालो, एहवा भेखधारी पंचमकालो।।

आचार्य भिक्षु ने अनुभव कियाह्नइस समस्या को सुलझाये बिना साधुत्व की गरिमा नहीं बढ़ सकती। इस चिन्तन के आधार पर उन्होंने शिष्यशाखा के संतोष का सूत्र दिया और व्यवस्था दीह्नकोई साधु अपना शिष्य न बनाए। सब शिष्य एक ही आचार्य के हों।

इस व्यवस्था से साधु संघ की गरिमा बढ़ी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैह्नतेरापंथ।

शुद्ध चारित्र की आराधना का उपाय

आचार्य भिक्षु ने जो मर्यादा की, अनुशासन के सूत्र दिए और व्यवस्थाएं दीं, उनका उद्देश्य है शुद्ध चारित्र की आराधना और आधार हैह्नममत्व विसर्जन। उन्होंने लिखाह्नशिष्यों तथा वस्त्र आदि उपकरणों तथा सुविधाजनक क्षेत्रों की

ममता कर न जाने कितने जीव चारित्र को गंवा बैठे हैं, दुर्गति का अनुभव कर रहे हैं। इस स्थिति पर चिन्तन कर शिष्य आदि की ममता मिटाने के लिए और शुद्ध चारित्र की आराधना के लिए इन मर्यादाओं (संविधान) का निर्माण किया।

मर्यादाओं के बिना विनय-मूलक धर्म की आराधना नहीं हो सकती और न्याययुक्त मार्ग पर भी चलना संभव नहीं हो सकता। इस दृष्टि से इन मर्यादाओं का निर्माण किया ।

शिष्य आदि को लेकर साधुओं में परस्पर कितने संघर्ष और कलह होते हैं, कितनी कटुता बढ़ती है, उसका अध्ययन कर, वैसे आचरण देखकर मर्यादाओं का निर्माण किया।

स्वतंत्रता का मूल्य

आचार्य भिक्षु आज्ञा और स्वतंत्रताह्नदोनों की सीमा को जानते थे। आज्ञा का अपना क्षेत्र होता है और स्वतंत्रता का अपना। आज्ञा के क्षेत्र में स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के क्षेत्र में आज्ञा के प्रयोग से दोनों का प्रभाव कम होता है।

आचार्य भिक्षु ने आचार और व्यवहार के क्षेत्र में आज्ञा को महत्त्व दिया और विचारह्नचिन्तन के क्षेत्र में स्वतंत्रता को महत्त्व दिया। मर्यादा के विषय में चिन्तन की स्वतंत्रता को महत्त्व देते हुए उन्होंने कहाह्न

'ऋष भीखन सर्व साधां ने पूछनै सर्व साध-साधवियां री मरजादा बांधी। ते साधां ने पूछने साधां कनां थी कहिवाय नै।

ए सर्व साधां रा परिणाम जोयनै रजाबंध करने यां कनां सू पिण जुदो-जुदो कहवाय नै मरजादा बांधी छै।

जिणरा परिणाम मांहिला चोखा हुवै ते मतो घालजो, कोई सरमासरमी रो काम छै नहीं। मूंढै और मन में और, इम तो साधु नै करवो छै नहीं, चरचा बोल किणनै छोडणो मेलणो......बुधवान् नै पूछनै करणो। सरधा रो बोल इत्यादिक पण तिमहिज जाणवो।

कोई टोलारो साधु-साधवियां में साधपणो सरधो, आप मांहै साधपणौ सरधो तको टोला मांहै रहिजो।'

सेवा और सहयोग

आचार्य भिक्षु ने साधु-संस्था को संगठित किया और संगठन का आधार भी प्रस्तुत किया। उनका एक मुख्य आधार हैह्नआश्वस्त और विश्वस्त होना। तेरापंथ धर्मसंघ में दीक्षित होने वाला व्यक्ति रुग्णावस्था, बुढ़ापा तथा उस

प्रकार की कठिन स्थितियों में असहायता का अनुभव न करे। इस दृष्टि से उन्होंने सेवा और सहयोग की सुदृढ़ व्यवस्था की। उसके कुछ सूत्र ये हैंह्न

१. जो कोई साध कारणीक हुवै, आंखियादिक गरढो, गिलाण हुवै, जद और साध उणरी अगिलाण पणै वियावच करणी।

२. उणनै संलेखना री ताकीद देणी नहीं। उण नै वैराग बधे ज्यूं करणो।

३. उणरे विहार करण री रीतह्ननिजर काची हुवै तो उणरै भरोसे निजर राखणी नहीं, उणनै घणी खप करनै चलावणो।

४. रोगियो हुवै तो उण रो बोझ उपाडणो। उणरा घणा परिणाम चढ़ता रहै ज्यूं करणो। पिण उण में साधपणो हुवै तो उणनै छेह देणो नहीं।

५. राजी दावै वैराग सुं संलेखणा करै तो पिण उण री वियावच करणी। कदा एक जणो करतो उछट हुवै तो सगलां नै रीत प्रमाणै करणी। नहीं करै तो नषेध नै करावणी। जो उ न करै, तो उणनै बीजा आगा सूं करावणी किण लेखे?

परिवर्तन और प्रतिक्रिया

सबका चिन्तन समान नहीं होता। कुछ लोग रूढ़ परम्परा को पसंद करते हैं और कुछ लोग परिवर्तन को पसंद करते हैं। परिवर्तन नहीं होता है तब परिवर्तन चाहने वाले विरोध करते हैं। परिवर्तन होता है तब परिवर्तन न चाहने वाले विरोध करते हैं। आचार्य भिक्षु ने समय-समय पर रूढ़ परम्परा में परिवर्तन किया। जब-जब परिवर्तन किया तब-तब विरोध भी उभरे।

आचार्य भिक्षु ने आचार्य की परम्परा के अनुसार उत्तराधिकारी के मनोनयन की व्यवस्था की तब चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी ने विरोध का स्वर बुलन्द किया और गण से अलग हो गये।

आचार्य भिक्षु ने शिष्य परम्परा को समाप्त किया। तब वीरभाणजी ने विरोध का स्वर बुलन्द किया और गण से अलग हो गये।

साध्वी चन्दुजी ने साध्वी वीरांजी आदि को अपनी शिष्या बनाया। तब आचार्य भिक्षु ने उन्हें गण से अलग कर दिया।

अनुशासन के प्रति जागरूकता

मूर्च्छा और अनुशासनह्नदोनों एक साथ नहीं हो सकते। शिष्य, उपकरण आदि के प्रति होने वाली मूर्च्छा अनुशासन को कमजोर बना देती है। कमजोर

अनुशासन चारित्र को शिथिल बना देता है। चारित्र की विशुद्धि के लिए अनुशासन जरूरी है। अनुशासन की दृढ़ता के लिए मूर्च्छा का विसर्जन जरूरी है।

आचार्य भिक्षु शिष्य, उपकरण आदि के प्रति होने वाली मूर्च्छा या ममत्व पर विजय पा चुके थे। उनका आन्तरिक उद्गार इसकी पुष्टि कर रहा हैह्न

कहो साधु किण रा सगा, तड़के तोड़े नेह।
आचारी स्यूं हिल मिले, अणाचारी स्यूं छेह।।

चण्डावल की घटना है। फत्तूजी आदि चार साध्वियों ने आचार्य भिक्षु से नया वस्त्र लिया और अपने स्थान पर चली गयीं। आचार्य भिक्षु को संदेह हुआ। मुनि अखैरामजी को साध्वियों के स्थान पर भेजकर उनके वस्त्र मंगवाकर मापा। वे परिमाण से अधिक निकले। आचार्य भिक्षु ने उन्हें कड़ा उलाहना दिया। उनकी गोलमटोल बातों से विश्वास नहीं हो सका। आचार्य भिक्षु को लगाह्न इनमें साधुत्व के प्रति गहरी आस्था नहीं है, उपकरणों में मूर्च्छा है। ये साधुत्व के योग्य नहीं हैं, यह अनुभव कर, उनका संघ से संबंध विच्छेद कर दिया।

मुनि खेतसीजी आचार्य भिक्षु के दायें हाथ थे। एक बार सिरियारी में उन्होंने आचार्य भिक्षु से कहाह्नमुनि सिंघजी (जो संघ से पृथक् हो गए हैं) को वापिस लेने मांढा गांव जा रहा हूं।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नवह गण में रहने योग्य नहीं है। ऐसा कहने पर भी मुनि खेतसीजी का उन्हें लाने का आग्रह रहा। वे अपनी भावना को रोक नहीं सके और उन्हें लाने के लिए तैयार भी हो गए।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नयदि तुमने उसके साथ संबंध जोड़ा तो हमारे साथ तुम्हारा संबंध नहीं रहेगा।

शान्त-सहवास सूत्र

अनेक व्यक्ति साथ रहते हैं, वहां नाना प्रकार की स्थितियां उत्पन्न होती हैं। प्रमाद हो सकता है। व्यवहार और आचरण में खामियां हो सकती हैं। मानसिक दुर्बलता और उससे होने वाली त्रुटियां भी हो सकती हैं। इस स्थिति में खामियों के परिष्कार की बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। पर इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह परिष्कार कैसे किया जाए? आचार्य भिक्षु ने इस विषय में बहुत सुन्दर मार्गदर्शन दिया। व्यवहार के क्षेत्र में उसकी सर्वत्र उपयोगिता है। उन्होंने लिखाह्न

- किसी साधु में दोषाचरण प्रतीत हो तो अवसर देखकर अविलम्ब उसे सावधान कर दे।
- दोषों को चुन-चुन कर इकट्ठा न करे।
- दोषाचरण करने वाला प्रायश्चित्त ले तो भी दोषाचरण की बात गुरु को जता दें।
- दोषाचरण करने वाला प्रायश्चित्त न ले तो उसे स्वीकार कराकर जो-जो दोषाचरण के विषय हों उन्हें लिखकर उसे दे दे और उसे कहेह्न 'इन बातों का तुम्हें गुरु से प्रायश्चित्त लेना है। तुम्हें ये प्रायश्चित्त योग्य न लगे तो भी गुरु को बता देना, लुकाव-छिपाव मत करना। यदि तुमने न कहा तो मुझे कहना पड़ेगा। मैं तुम्हारे दोषाचरण की उपेक्षा नहीं करूंगा। मुझे जो शंकासहित प्रतीत होगा, उसे शंकासहित कहूंगा। जिसे निःशंक भाव से जानता हूं, उसे निःशंक भाव से कहूंगा। अभी तुम सीधे मार्ग पर चलो।' उसे इस प्रकार सावधान करे, पर दोषों को इकट्ठा न करे।

यदि दोषाचरण करने वाला इस बात को स्वीकार न करे तो विश्वस्त गृहस्थ को उसके सामने सारी बात जता दे। प्रच्छन्न रूप से उसे कुछ न कहे। यह व्यवस्था चातुर्मासिक प्रवास की स्थिति में है। शेषकाल की स्थिति में किसी को कुछ न कहे। जहां गुरु हो वहां आ जाये और उनके सामने सारी स्थिति रख दे। कोई वितण्डावाद न करे।

अनेक दोषों को इकट्ठा कर उपस्थित होने वाला स्वयं झूठा पड़ेगा। सच-झूठ तो केवली जानें, छद्‌मस्थ के व्यवहार में तो जो दोष एकत्रित करता है, वह अवगुण का भण्डार है।

अनाग्रह का मंत्र

आचार्य भिक्षु अनेकान्त के प्रवक्ता थे। उन्होंने अनेकान्तवाद को व्यवहार के धरातल पर उतारा। एकांगिता का दृष्टिकोण आग्रह पैदा करता है। उससे खिंचाव और तनाव पैदा होता है और उससे संगठन भी कमजोर होता है। उन्होंने लिखाह्न

- कोई सरधा (मान्यता), आचार, सूत्र अथवा कल्प का नया बोल उपस्थित हो तो बड़ों (आचार्य) से चर्चा करे, किन्तु अन्य से चर्चा न करे।

- दूसरों से चर्चा कर उन्हें शंकाशील न बनाए।
- बड़े (आचार्य) उत्तर दे वह बुद्धिगम्य हो तो उसे स्वीकार करे और यदि वह बुद्धिगम्य न हो तो उसे केवलीगम्य कर दे किन्तु संघ में भेद न डाले।
- कोई तत्त्व-चर्चा का बोल सामने आए तो बुद्धिमान् साधु विचार कर उसका निर्णय करे। कोई सरधाह्नमान्यता का बोल उपस्थित हो तो बुद्धिमान् साधु उस पर विचार कर उसकी संगति बिठाएं। किसी बोल की संगति न बैठे तो उसकी खींचातान न करे। उसे केवलीगम्य कर दे, परन्तु अंशमात्र भी आग्रह न करे।

अनाग्रह के उच्चतम शिखर पर आरोहण कर आचार्य भिक्षु ने जो घोषणा की, वह अनेकान्त की महत्त्वपूर्ण घोषणाओं में से एक है, असाधारण है।

आज्ञा : परम मूल्य

आचार्य भिक्षु ने आज्ञा को सर्वोपरि मूल्य दिया। उनकी वाणी हैह्न

जिन शासन में आज्ञा बड़ी।
आतो बांधी रे भगवन्ता पाल।।
सहु सज्जन असज्जन भैला रहे।
छांदो रुंधे रे प्रभु वचन संभाल।।

उन्होंने आज्ञा का मूल्यांकन करते हुए इन मर्यादा-सूत्रों का निर्माण कियाह्न

१. साधु-साध्वियां आचार्य की आज्ञा की आराधना करें।

२. विहार, चातुर्मास आचार्य की आज्ञा से करें। आचार्य की आज्ञा का उल्लंघन कर अथवा बिना आज्ञा कहीं न रहें।

३. दीक्षा आचार्य के नाम से दें।

४. दीक्षा के बाद दीक्षित साधु को आचार्य को लाकर सौंपे।

५. आचार्य की इच्छा हो तब गुरु-भाई, शिष्यादि को गण का भार सौंप सकेगा। यह रीति है, परम्परा है।

६. आचार्य जिसको भी गण का भार सौंपे, सर्व साधु-साध्वियां उसकी आज्ञा में चलें।

७. सर्व साधु-साध्वियां एक ही आचार्य की आज्ञा में चलें। ऐसी रीति निर्धारित की है। यह संघ चले तब तक के लिए यह रीति है।

सामुदायिकता का प्रयोग, संघ की अखंडता के लिए

संघ में शक्ति होती है। इसे आचार्य भिक्षु अच्छी तरह से जानते थे। उन्होंने व्यक्ति को स्वतंत्रता दी, मूल्य दिया, पर साथ-साथ संघ को भी मूल्य दिया। उन्होंने दोनों का ऐसा संतुलन स्थापित किया, जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व भी सुरक्षित रहा और संघ भी शक्तिशाली बना।

आचार्य भिक्षु ने व्यवस्था दीह्न

- प्रतियों और पन्नों की याचना बड़ों (आचार्य) की निश्रा में करेंह्नअपनी निश्रा में न करें।
- पात्र, लोट आदि की याचना बड़ों की निश्रा में करें, अपनी निश्रा में न करें। वे दें तो लें।
- गण से निकलने पर किसी साधु-साध्वी को साथ ले जाने का त्याग है। कोई साथ जाता हो तो भी उसे अपने साथ ले जाने का त्याग है, अनन्त सिद्धों की साक्षी से।
- पात्र, लोट आदि सर्व उपकरण अपने साथ ले जाने का त्याग है।
- कपड़ा नया हो तो वह भी साथ ले जाने का त्याग है।
- एक पुराना चोलपट्टा, मुंहपती, एक पुरानी पछेवड़ी, खंडिया और पुराने रजोहरण के उपरान्त वस्तुएं साथ ले जाने का अनन्त सिद्धों की साक्षी से त्याग है।
- गण में रहते हुए पन्ने लिखे अथवा लिखावे अथवा कोई दे, वह गण में रहे तभी तक के लिए उसके हैं। गण से जुदा हो तो पन्ने टोले के हैं अतः उन्हें साथ ले जाने का त्याग है। नियम की अजानकारी से जो पड़त, पन्ने अपनी निश्रा में लिये हों वे बड़ों के हैं, टोले के हैं। उन्हें भी साथ ले जाने का त्याग है।
- दीक्षा दे वह भी बड़ों (आचार्य) के नाम से दे, अपना-अपना (व्यक्तिगत) शिष्य बनाने का त्याग है।

संघ से पृथक् होने वाले के प्रति

संघ और संगठन से अलग होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। चिंतन का भेद, प्रकृति की जटिलता, स्वच्छन्द मनोवृत्ति आदि अनेक कारण हैं जो

अलग होने के हेतु बन जाते हैं। जो संघ से अलग हो जायें, उनके लिए आचार्य भिक्षु ने यह विधान कियाह्न

१. गण में से एक-दो-तीन आदि साधुह्नसाध्वियां निकलें, उन्हें साधु न माना जाये।

२. चार तीर्थ में न गिना जाये।

३. संघ का निन्दक माना जाये।

४. वंदन नमस्कार करने वाले को भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला माना जाये।

५. मिथ्याभाषी समझा जाये। वह सच्चा हो तो ज्ञानी जाने। छद्मस्थ के व्यवहार में उसे झूठा समझा जाये।

आचार्य भिक्षु समता तथा राग-द्वेष रहित भाव की पुष्टि के लिए सदा जागरूक रहते थे। उन्होंने गण में विद्यमान साधु-साध्वियों के लिए व्यवस्थाएं कीं तथा कोई कदाचित् गण से पृथक् हो जाए, उसके लिए भी व्यवस्थाएं कीं, उन्हें भविष्य के लिए प्रत्याख्यान दिलाए और मार्ग-दर्शन किया। उसका एक अनुच्छेद इस प्रकार हैह्न

१. गण में अथवा कदाचित् कर्मयोगवश गण से पृथक् हो जाए उसे गण के साधु-साध्वियों का अंश मात्र भी अवगुण बोलने का त्याग है।

२. अंश मात्र भी शंका उत्पन्न हो, आस्था उतरे, वैसा बोलने का त्याग है।

३. मन फटे, वैसा बोलने का त्याग है।

४. कर्म योग से अथवा क्रोध वश कोई साधु-साध्वियों और समूचे गण को असाधु समझे, अपने आपको असाधु समझे तथा गण से पृथक् होकर फिर दीक्षा ले तो भी गण के साधु-साध्वियों के प्रति शंका उत्पन्न करने का, उन्हें खोटा कहने का त्याग है। उसे वैसा का वैसा पालन करना है। हमने पुनः दीक्षा ली है। अब हम पहले स्वीकार किए हुए त्याग के पालने के लिए बंधे हुए नहीं है'ह्नऐसा कहने का भी त्याग है।

५. किसी को दीक्षा लेते देख या जानकर स्वयं गण से पृथक् हो, उसे शिष्य बनाकर अपना नया मार्ग निकालने और अपने मत को जमाने का त्याग है।

६. गण से पृथक् होने के बाद इस सरधा (मान्यता) के भाई-बहन हो वहां न रहे। एक भी बहन-भाई हो वहां न रहे। रास्ते चलते एक रात कारण से रहे तो पांचों विगय एवं मिठाई खाने का त्याग है। अनन्त सिद्धों की साक्षी से त्याग है।

७. कोई पूछे कि सरधा के क्षेत्रों में रहने का त्याग क्यों करवाया। उसे इस प्रकार कहनाह्नराग-द्वेष बढ़ने की संभावना, क्लेश बढ़ने की संभावना तथा उपकार घटने की संभावना को ध्यान में रखकर तथा ऐसे अन्य अनेक कारणों को ध्यान में रखकर यह प्रत्याख्यान करवाया है।

आचार्य भिक्षु ने संघ से पृथक् होने वालों के लिए एक आचार-संहिता दी जिससे कि वे पृथक् होने के क्षण में तथा पृथक् होने के बाद शिष्टता का पालन करें और राग-द्वेष को न बढ़ाएं।

उन्होंने लिखाह्नकिसी के द्वारा साधुत्व का पालन शक्य न हो, किसी से स्वभाव न मिल पाए अथवा धीठ एवं कषाययुक्त जान कर कोई साधु उसे साथ में न रखे, चातुर्मासिक प्रवास या विहार का क्षेत्र अच्छा न मिलने पर अथवा वस्त्रादि के कारण अथवा अयोग्य जानकर साधुओं द्वारा स्वयं को गण से पृथक् करने की बात जान लेने पर इत्यादिक अनेक कारणों से कोई गण से पृथक् हो जाए तो गण के साधु-साध्वियों के अवगुण बोलने का त्याग है, विद्यमान या अविद्यमान दोष फैलाने का त्याग है। छिपे-छिपे लोगों को शंकित और भ्रमित कर संघ के प्रति उनकी आस्था को कम करने का त्याग है।

४. मौलिक स्थापनाएं

आचार्य भिक्षु ने कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापनाएं कीं। वे शाश्वत होने के साथ-साथ युग का प्रतिनिधित्व भी कर रही हैं।

१. सार्वभौम धर्मह्नधर्म सम्प्रदाय की सीमा में बंधा हुआ नहीं है। अजैन व्यक्ति भी अहिंसा, ब्रह्मचर्य, तप, संयम आदि का आचरण करता है, वह धर्म है, मोक्ष-मार्ग की आराधना है। इस घोषणा ने धर्म के असाम्प्रदायिक स्वरूप को उजागर कर दिया।

२. धर्म के नाम पर भिखमंगों को पाला जा रहा है। आचार्य भिक्षु ने कहाह्न'भिखारियों को दान देना धर्म या पुण्य नहीं है।' आज भिखारीपन को बढ़ावा देना सामाजिक अपराध माना जाता है।

३. समाजोपयोगी कार्य धर्म या पुण्य के प्रलोभन से करना या करने की प्रेरणा देना अधर्म है।

४. अशुद्ध साधन से शुद्ध साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध साध्य और शुद्ध साधनह्नदोनों का योग ही धर्म है।

५. अर्हत् आज्ञा की आराधना ही धर्म है। उसकी विराधना अधर्म है।

६. बड़ों के पोषण के लिए छोटों को कष्ट देना या उनका हनन करना धर्म नहीं है।

७. धन से धर्म नहीं खरीदा जाता।

८. बल-प्रयोग से अहिंसा नहीं सध सकती।

९. अहिंसा का एक मात्र उपाय हैह्नहृदय-परिवर्तन।

१०. जहां धर्म (निर्जरा) नहीं है, वहां पुण्य का बंध भी नहीं है। गेहूं के साथ भूसा और चावल के साथ पलाल अपने आप होता है। वैसे ही धर्म के साथ पुण्य का बंध अपने आप होता है, किन्तु स्वतंत्र बंध नहीं होता। गेहूं के साथ भूसा होता है, पर भूसे के लिए गेहूं

नहीं बोया जाता। धर्म के साथ पुण्य-बंध होता है पर पुण्य के लिए धर्म नहीं किया जाता। जो पुण्य की इच्छा करता है, उसके पाप का बंध होता है।

११. धर्म आत्मा की मुक्ति का साधन है। पुण्य शुभ परमाणुओं का बंध है। बंधन और मुक्ति एक नहीं हो सकते। धर्म और पुण्य एक नहीं हो सकते।

१२. समाज और अध्यात्म की रेखाएं समानान्तर रेखा की भांति साथ-साथ चलती हैं पर वे कभी नहीं मिलतीं। सामाजिक प्राणी के लिए असंयम की निवृत्ति की उपयोगिता है और वह भी एक सीमा तक। पर आध्यात्मिक प्राणी के लिए असंयम की निवृत्ति परम धर्म है और वह निस्सीम रूप में।

धर्म की कसौटी

सत् और असत् सापेक्ष होते हैं। वे कसौटी पर कसे जाते हैं तब उनका अस्तित्व प्रमाणित होता है। आचार्य भिक्षु ने एक कसौटी का निर्धारण किया, वह है अर्हत् की आज्ञा। जो आचरण अर्हत् की आज्ञा के अन्तर्गत है, वह सत् है, वह धर्म है और जो आचरण अर्हत् की आज्ञा के अन्तर्गत नहीं है, वह असत् है, वह अधर्म है।

इस कसौटी के आधार पर आचार्य भिक्षु ने धर्म की व्याख्या कीह्न

त्याग धर्म है, भोग अधर्म है।

व्रत धर्म है, अव्रत अधर्म है।

संयम धर्म है, असंयम अधर्म है।

अहिंसा धर्म है, हिंसा अधर्म है।

जीने की आकांक्षा करना राग है।

मरने की कामना करना द्वेष है।

वीतरागता की भावना करना धर्म है।

मिश्र-धर्म नहीं

धर्म और अधर्म की करनीह्नक्रिया या प्रवृत्ति एक नहीं है। धर्म की करनी से अधर्म नहीं होता और अधर्म की करनी से धर्म नहीं होता। दोनों का मिश्रण नहीं होता। एक कारण से दो कार्य नहीं हो सकते।

दूसरी वस्तुओं में मिश्रण हो सकता है परन्तु दया में हिंसा की मिलावट नहीं हो सकती।

जिस प्रकार धूप छांव भिन्न हैं, उसी प्रकार दया और हिंसा भिन्न हैं।

जो वर्तमान में होता है, वह सही है

आचार्य भिक्षु ने वर्तमान का मूल्यांकन किया। उन्होंने बतायाह्नधर्म और अधर्म की करनी वर्तमान में होती है। पहले और पीछे जो होता है, उससे उसका प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। प्रश्न उपस्थित हुआह्नआप किसी व्यक्ति को त्याग कराते हैं और वह उसे तोड़ देता है तो त्याग तोड़ने का पाप आपको भी लगेगा?

आचार्य भिक्षु दृष्टांत की भाषा में बोलेह्नएक दुकानदार ने कपड़ा बेच दिया। उस ग्राहक ने उस कपड़े को जिस मूल्य में खरीदा, उससे दूने मूल्य में बेच दिया। क्या उस दुकानदार को उससे लाभ होगा?

नहीं होगा।

उस ग्राहक ने कपड़ा खरीदा और उसे जला दिया। क्या उससे दुकानदार को कोई हानि होगी?

नहीं होगी।

हमने किसी व्यक्ति को त्याग दिलाया। उस समय जो लाभ हमें होना था, हो गया। उसके बाद वह त्याग पालेगा, उससे हमें कोई लाभ नहीं होगा और यदि तोड़ देगा तो उससे हमें कोई हानि नहीं होगी। जो वर्तमान में होता है, वही सही है।

धर्म और कर्त्तव्य

आचार्य भिक्षु ने मोक्षधर्म, बन्धन और जीवन-व्यवहार के बीच एक भेदरेखा खींची। मोक्षधर्म बन्धन मुक्ति का मार्ग है। वह शाश्वत है। वह देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप नहीं बदलता। धर्म में कर्त्तव्य के कुछ तत्त्व निहित हैं किन्तु धर्म और कर्त्तव्य सर्वथा एक नहीं है। कर्त्तव्य समाज की उपयोगिता है। वह देश, काल व परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। धर्म देश, काल और परिस्थिति के कारण नहीं बदलता।

अध्यात्म का मूल हैह्नसमता। समता के क्षेत्र में बड़े के लिए छोटे का बलिदान या अधिक के लिए थोड़ों का बलिदान अनुमत नहीं है। किन्तु व्यवहार में पग-पग पर ऐसा करना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा करना लौकिक कर्त्तव्य भी बन जाता है। किन्तु बड़े के लिए छोटे का बलिदान कर देना धर्म नहीं हो सकता।

साध्य-साधनवाद

प्रत्येक क्रिया के दो पहलु होते हैंह्नसाध्य और साधन। आचार्य भिक्षु ने कहाह्नसाध्य और साधनह्नदोनों शुद्ध हों तभी मोक्ष की साधना हो सकती है। अशुद्ध साधन से शुद्ध साध्य उपलब्ध नहीं हो सकता। जिसका साध्य जीवन-मुक्ति होता है उसे शुद्ध साधन का आलम्बन लेना ही होता है।

साधन-शुद्धि के आधार पर उन्होंने कहाह्न

- हिंसा मोक्ष का साधन नहीं हो सकती।
- परिग्रह या प्रलोभन मोक्ष का साधन नहीं हो सकता।
- बल-प्रयोग मोक्ष का साधन नहीं हो सकता।
- मोक्ष का साधन होता हैह्नअहिंसा, अपरिग्रह और ह्वदय-परिवर्तन।

पाप का अर्थ

शब्द एक, अर्थ अनेक, वहां कुछ उलझनें पैदा होती हैं। आचार्य भिक्षु ने कहाह्न'आचरण का परिणाम धर्म या पाप है।' पाप शब्द बहुत कड़वा है, तीखा है, सीधी चोट-सी करता है, इसलिए जरूरी है समझना कि आचार्य भिक्षु पाप किसे कहते थे। पाप का एक अर्थ होता हैह्नदुष्ट, अधम। पाप का दूसरा अर्थ हैह्ननिन्दनीय। आचार्य भिक्षु द्वारा प्रयुक्त पाप का कोई तीसरा ही अर्थ है और वह हैह्नअशुभ कर्म परमाणुओं का बंध।

किसी ने उनसे पूछाह्न'भिखारी को दान देने में क्या होता है? उन्होंने कहाह्न'पाप होता है।'

वे यह कहना चाहते थे कि परिग्रह रखना भी पाप है और उसे किसी दूसरे को देना भी पाप है? परन्तु वे यह कहना भी नहीं चाहते थे कि परिग्रह रखना भी निन्दनीय है और उसे किसी दूसरे को देना भी निन्दनीय है। पाप कहने का अर्थ इतना ही है वह आध्यात्मिक आचरण नहीं है, वह सामाजिक व्यवहार है।

चिन्तन-मंथन

आचार्य भिक्षु तार्किक-शक्ति से सम्पन्न थे। उन्होंने साध्य-साधन का विवेचन केवल आगमों के आधार पर ही नहीं किया, स्थान-स्थान पर उसे तर्क से भी पुष्ट किया। धर्म को कसौटी पर कसते हुए उन्होंने बतायाह्नधर्म मुक्ति का साधन है। मुक्ति का साधन मुक्ति ही हो सकती है, बंधन कभी उसका साधन नहीं होता। बंधन भी यदि मुक्ति का साधन हो जाए तो बंधन और मुक्ति में कोई भेद ही न रहे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के सिवाय कोई मुक्ति का उपाय

ही नहीं है। इसलिए ये चार ही धर्म हैं। शेष सब बन्धन के हेतु हैं। जो बंधन के हेतु हैं, वे मोक्ष धर्म नहीं हैं। धर्म मुक्ति का साधन है और स्वयं मुक्ति है। इसलिए कहा जा सकता है कि मुक्ति मुक्ति के द्वारा ही प्राप्य है, बंधन के द्वारा बंधन होता है। उसके द्वारा मुक्ति प्राप्य नहीं है। बंधन अनादि परिचित है और मुक्ति अपरिचित है। इसलिए संसारी जीव बंधन की प्रशंसा करते हैं। किंतु मुमुक्षु प्राणी उसकी सराहना नहीं करते।

• मोक्ष हैह्नसूक्ष्म शरीर से मुक्ति। उसके बिना स्थूल शरीर नहीं होता। उसके अभाव में इन्द्रियां और मन नहीं होते। इनके बिना विषय नहीं होता। विषय के अभाव में राग-द्वेष नहीं होते। राग-द्वेष के बिना कर्म का बंध नहीं होता। बन्धन के बिना संसार नहीं होता, जन्म-मरण की आवृत्ति नहीं होती। मोक्ष से संसार नहीं होता और संसार से मोक्ष नहीं होता, इसलिए मोक्षार्थी व्यक्ति को न जन्म की इच्छा करनी चाहिए और न मृत्यु की। उसके लिए अभिलषणीय है संयम। संयम से जीवन-मृत्यु की आवृत्ति का निरोध होता है इसलिए वह मोक्ष का उपाय है, मोक्ष है।

• जिन्हें सब प्रकार से हिंसा करने का त्याग नहीं है, वे असंयमी हैं। संयमी वे हैं, जिनका जीवन हिंसा से पूर्णतः विरत है। लोकदृष्टि में वह जीवन श्रेष्ठ है, जो समाज के लिए उपयोगी है। मोक्षदृष्टि में वह जीवन श्रेष्ठ है, जो संयमी है। असंयमी जीवन की इच्छा समाज की उपयोगिता हो सकती है, धर्म नहीं। आचार्य भिक्षु ने कहाह्नअपने असंयमी जीवन की इच्छा करना भी पाप है तब दूसरे के असंयमी जीवन की इच्छा करना धर्म कैसे होगा? मरने-जीने की इच्छा अज्ञानी करता है। ज्ञानी वह है, जो समभाव रखे।

• धर्म का संबंध जीवन या मृत्यु से नहीं है। उसका संबंध संयम से है। एक व्यक्ति स्वयं मरने से बचा, दूसरे ने उसके जीवित रहने में सहयोग दिया और तीसरा उसके जीवित रहने से हर्षित हुआ। इन तीनों में धर्मी कौन-सा होगा? जो जीवित रहा, उसका भी अव्रत नहीं घटा, सहयोग करने वाले और हर्षित होने वाले का भी व्रत नहीं बढ़ा, फिर ये धर्मी कैसे होंगे? जीना, जिलाना और जीने का अनुमोदन करनाह्नये तीनों समान हैं।

समर्पण का स्वर

आचार्य भिक्षु के पास श्रद्धा का भी अमित बल था। वे जितने तार्किक थे उतने ही श्रद्धालु थे। श्रद्धा और तर्क के संगम में ही व्यक्ति का दृष्टिकोण पूर्ण बनता है। कुसुम्बा स्वयं गलकर दूसरों को रंगता है। भक्त हृदय का

गीलापन दूसरों को स्निग्ध कर देता है। आचार्य भिक्षु की अटल आस्था इस कोटि की है कि वे भगवान् महावीर और उनकी वाणी पर स्वयं को न्यौछावर कर चलते हैं। उनके समर्पण की भाषा यह हैह्नप्रभो! आपने सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप को मुक्ति का मार्ग कहा है। मैं इनके सिवा और किसी तत्त्व को धर्म नहीं मानता। मैं अर्हत् को देव, निर्ग्रन्थ को गुरु और आपके द्वारा प्ररूपित मुक्ति-मार्ग को ही धर्म मानता हूं। मेरे लिए दूसरा सब भ्रमजाल है। मेरे लिए आपकी आज्ञा ही सर्वोपरि प्रमाण है।

- वे धर्म को एक मानते थे। मिथ्यादृष्टि की निरवद्य प्रवृत्ति धर्म हैह्नइसका दृढ़तापूर्वक समर्थन कर उन्होंने जैन परम्परा के उदार दृष्टिकोण को बहुत ही प्रभावशाली बना दिया। अमुक सम्प्रदाय का अनुयायी बनने से ही धर्म होता है, अन्यत्र नहीं। इस भ्रमपूर्ण मान्यता का उनकी स्पष्ट वाणी से स्वतः खण्डन हो गया। धर्म और सम्प्रदाय एक नहीं है, इस सचाई की उन्हें गहरी अनुभूति थी। उन्होंने कहाह्ननिरवद्य प्रवृत्ति धर्म है, भले फिर वह जैन की हो या जैनेतर की। सावद्य प्रवृत्ति अधर्म है, भले फिर वह जैन की हो या जैनेतर की।

- भगवान् का धर्म समुद्र की तरह विशाल और आकाश की तरह व्यापक है। जो धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है, भगवान् ने जिसकी व्याख्या की है, वह है एक शब्द मेंह्नअहिंसा। भगवान् ने कहाह्नप्राण, भूत, जीव और सत्वों को मत मारो, उन पर अनुशासन मत करो, उन्हें दास-दासी बनाकर अपने अधीन मत करो, उन्हें परिताप मत दो, उन्हें कष्ट मत दो, उन्हें उपद्रुत मत करोह्नयही धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। यह धर्म सबके लिए हैह्नजो धर्म के आचरण के लिए उठे हैं या नहीं उठे हैं। जो धर्म सुनना चाहते हैं या नहीं चाहते हैं, जो प्राणियों को दण्ड देने से निवृत्त हुए हैं या नहीं हुए हैं, जो उपाधि से युक्त हैं या उपाधि से रहित हैं, जो संयोग से बंधे हुए हैं या नहीं हैं।

- जीव जीता है, वह अहिंसा या दया नहीं है। कोई मरता है, वह हिंसा नहीं है। मारने की प्रवृत्ति हिंसा है और मारने की प्रवृत्ति का संयम करना अहिंसा है।

आक्रमण के प्रति आक्रमण और शक्ति-प्रयोग के प्रति शक्ति-प्रयोग कर हम हिंसा के प्रयोगात्मक रूप को टालने में सफल हो सकें, यह सम्भव है। पर वैसा कर हम हृदय को पवित्र कर सकें या करा सकें, यह संभव नहीं। आचार्य भिक्षु ने कहाह्नशक्ति के प्रयोग से जीवन की सुरक्षा की जा सकती है पर वह अहिंसा नहीं है।

- अनाचार करने वाले को समझा-बुझाकर अनाचार से छुड़ाना, यही है

अहिंसा का मार्ग। हिंसा और वध सर्वथा एक नहीं है। अहिंसक के द्वारा भी किंचित् अशक्य कोटि का वध हो सकता है, किन्तु यदि उसकी प्रवृत्ति संयममय हो तो वह हिंसा नहीं होती। वध को बल प्रयोग से भी रोका जा सकता है किन्तु वह अहिंसा नहीं होती। अहिंसा तभी होती है जब हिंसा करने वाला समझ बूझकर उसे छोड़ता है। आचार्य भिक्षु ने कहाह्नप्रेरक का काम हिंसक को समझाने का है। अहिंसा के क्षेत्र में वह यहीं तक पहुंच सकता है। हिंसा तो तब छूटेगी जब हिंसा करने वाला उसे छोड़ेगा।

- अहिंसा का पालन वही कर सकता है, जिसका मन दया से भीगा हुआ हो। पर साधन की विकृति से दया भी विकृत बन जाती है। एक आदमी मूली खा रहा है। दूसरे के मन में मूली के जीवों के प्रति दया उत्पन्न हुई। उसने बलह्नप्रयोग किया और जो मूली खा रहा था, उसके हाथ से वह छीन ली। दया का यह साधन शुद्ध नहीं है। हिंसक वही होता है, जो हिंसा करे, जिसके मन में हिंसा का भाव हो और अहिंसक भी वही होता है, जो अहिंसा का पालन करे, जिसके मन में अहिंसा का भाव हो। बलात् किसी को हिंसक या अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। भोग धर्म नहीं है, यह जानकर यदि कोई बलात् किसी के भोगों का विच्छेद करता है तो वह अधर्म करता है।

- मुक्ति का मार्ग सबके लिए एक है। मुमुक्षाभाव गृहस्थ में भी रहता है और मुनि में भी। मुनि गृहवास छोड़कर सर्वारम्भ से विरत रहता है, इसलिए वह मोक्ष-मार्ग की आराधना का पूर्ण अधिकारी होता है। एक गृहस्थ गृहवास में रहकर सर्वारम्भ से विरत नहीं हो पाता, इसलिए वह मोक्ष-मार्ग की आराधना के पथ का एक सीमा तक अधिकारी होता है। किन्तु मोक्ष-मार्ग की आराधना का पथ दोनों के लिए एक है।

५. प्रेरकह्नसंस्मरण

विभज्यवाद के प्रवक्ता

आचार्य भिक्षु विभज्यवाद के प्रवक्ता और प्रयोक्ता थे। उन्होंने प्रत्येक शब्द या प्रश्न का विभाग से उत्तर दिया। किसी ने पूछाह्न'समाजोपयोगी प्रवृत्ति करना क्या धर्म है?' आचार्य भिक्षु ने कहाह्नधर्म शब्द के अनेक अर्थ होते हैंह्न

- स्वभावह्नजैसे उष्णता अग्नि का धर्म है।
- कर्त्तव्यह्नजैसे राष्ट्र की सुरक्षा करना सैनिक का धर्म है।
- सहयोगह्नजैसे असहायों की सहायता करना समाज का धर्म है।
- व्यवस्थाह्नजैसे नगर की व्यवस्था करना नगरपालिका का धर्म है।
- न्यायह्नजैसे अपराधी को दण्ड देना न्यायाधीश का धर्म है।
- आध्यात्मिक आचरणह्नजैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करना आध्यात्मिक धर्म है।

'तुम किस अपेक्षा से पूछ रहे हो?' यदि आध्यात्मिक आचरण की दृष्टि से पूछे रहे हो तो समाजोपयोगी प्रवृत्ति करना धर्म नहीं है। यदि कर्त्तव्य आदि की अपेक्षा से पूछ रहे हो तो उसे धर्म कहने में किसे आपत्ति हो सकती है?

किसी ने पूछाह्न'मैंने भूखे आदमी को रोटी खिलाई, प्यासे को पानी पिलाया, मुझे धर्म हुआ या नहीं?'

आचार्य भिक्षु ने कहाह्न'मैं धर्म को दो दृष्टियों से देखता हूं। एक लौकिक धर्म, जो लोक सम्मत है। दूसरा लोकोत्तर धर्म, जो अध्यात्म सम्मत है। तुम किस धर्म की अपेक्षा से पूछ रहे हो?

'यदि लौकिक धर्म की अपेक्षा से पूछ रहे हो तो मैं कहूंगा कि

सभी लोकोपयोगी कार्य यदि लोक सम्मत हैं तो उन्हें लौकिक धर्म कहा जा सकता है।'

'यदि तुम लोकोत्तर धर्म की अपेक्षा से पूछना चाहते हो तो मैं कहूंगा कि वे प्रवृत्तियां अध्यात्म सम्मत नहीं हैं, इसलिए उन्हें लोकोत्तर धर्म नहीं कहा जा सकता।'

जागरूक प्रहरी

धर्म से केवल चित्तशुद्धि ही नहीं होती, उससे दृष्टिकोण का परिष्कार भी होता है, अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों का उन्मूलन भी होता है। समाज-व्यवस्था पर भी उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है।

आचार्य भिक्षु प्रारम्भ से ही धार्मिक पुरुष थे। उनकी धर्म-चेतना जागृत थी।

गृहस्थ जीवन की एक घटना है। शादी के बाद वे एक बार ससुराल गए। वहां स्त्रियों ने गालियां गानी शुरू कीं। 'ओ कुण कालौ नै काबरो.........।' आचार्य भिक्षु को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहाह्न'मेरा साला लंगड़ा है उसे तो तुम अच्छा बता रही हो और अच्छे को इतना बुरा बता रही हो। ऐसे झूठ-भरे वातावरण में मैं भोजन नहीं कर सकता।' यह कह वे परोसी हुई थाली को छोड़, उठकर चले गये।

लज्जा के लिए घूंघट और गाली गाते समय लज्जा का त्यागह्नमहिलाओं की इस रूढ़ि पर आचार्य भिक्षु ने तीखा व्यंग्य करते हुए कहाह्न

नारी लाज करै घणी, न दिखावै मुख ने आंख।
गाली गावण ओसरी, जाणै कपड़ा दीधा नाख।।

आचार्य भिक्षु अन्धविश्वास को अनावृत करने में बड़े सजग थे। 'मजना चोर' वाली घटना इसका सबल साक्ष्य है।

अंतर्दृष्टि या प्रज्ञा

जिसकी दृष्टि जागृत होती है, वह क्षितिज के इस पार देखता है। जिसकी अन्तर्दृष्टि जाग जाती है वह क्षितिज के उस पार भी देख सकता है। आचार्य भिक्षु की अन्तर्दृष्टि जागृत थी। उन्हें प्रज्ञा का बल उपलब्ध था। उसके आधार पर वे भविष्य की खिड़की से झांक लेते थे।

१. एक व्यक्ति ने पूछाह्नघोड़े के कितने पैर होते हैं?

आचार्य भिक्षु थोड़ी देर मौन रह कर बोलेह्नदो आगे, दो पीछेह्नचार पैर होते हैं।

प्रश्नकर्ता बोलाह्नसीधी-सी बात पूछी, उसका उत्तर देने में आपको इतना चिन्तन कैसे करना पड़ा? बहुत लोग आपकी प्रत्युत्पन्नमति से आश्चर्यचकित हैं, फिर इतना विलम्ब कैसे?

आचार्य भिक्षु बोलेह्नतुम्हारा अगला प्रश्न हो सकता हैह्नकनखजूरे के कितने पैर होते हैं? तब मुझे सोचना पड़ता, उस समय क्या तुम यह व्यंग्य नहीं कसते कि पहले प्रश्न का झट-से उत्तर दे दिया, अब गाड़ी अटक गई।

प्रश्नकर्त्ता सकुचाता-सा बोलाह्नआपने मेरे मन की बात कैसे जान ली? मैं तो यही पूछने वाला था।

२. आचार्य भिक्षु ने सिरियारी में चातुर्मास किया। वहां पोतियाबंध सम्प्रदाय के कपूरजी थे। संवत्सरी के अवसर पर कपूरजी बोलेह्नभीखणजी! पोतियाबंध की बहनों से बोलचाल हो गई थी, इसलिए उनसे खमतखामणा करने जा रहा हूं।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नतुम खमतखामणा करने जा रहे हो, पर ध्यान रखनाह्नकहीं नया झगड़ा न कर बैठो।

कपूरजी बोलेह्ननया झगड़ा क्यों करूंगा?

यह कहकर वे वहां गए और बहनों से बोलेह्नतुम लोगों ने मेरे साथ बहुत अनुचित व्यवहार किया, किन्तु मुझे तो राग-द्वेष नहीं रखना है, इसलिए मैं खमतखामणा करता हूं।

कपूरजी की बातें सुनकर बहनें बोलींह्नअनुचित व्यवहार आपने किया या हमने? बात-बात में विवाद बढ़ गया। कपूरजी अपना-सा मुंह लिए वापिस आए और आचार्य भिक्षु से बोलेह्नझगड़ा तो बढ़ गया।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नमैंने तो तुम्हें पहले ही कहा था।

अनेक साक्ष्य हैं कि आचार्य भिक्षु होने वाली घटना को पहले ही जान लेते थे। भविष्य उनके सामने वर्तमान बनकर उपस्थित हो जाता था।

अनुभव पुरुष

आचार्य भिक्षु बौद्धिक पुरुष नहीं थे। वे अनुभव पुरुष थे। उन्होंने अनुभव के स्तर पर सत्य को उपलब्ध किया। बुद्धि के स्तर पर सत्य की व्याख्या करने वाले सत्य को सीमित कर देते हैं। वे सत्य को बांट देते हैं, तोड़ देते हैं,

उसे सामयिक बना देते हैं। बुद्धि का सत्य हमेशा सामयिक होता है। जैसे-जैसे समय के चरण आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे सामयिक सत्य पुराना होता जाता है। पुराने का अर्थ हैह्नवर्तमान के लिए अनुपयोगी, व्यर्थ। जैसे-जैसे समय के चरण आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे शाश्वत सत्य नया होता जाता है। नए का अर्थ हैह्नआज के लिए उपयोगी, सार्थक।

एक भिखारी को कुछ आटा मिला। वह रोटी पकाने बैठा। एक रोटी सेक ली। एक रोटी सिक रही थी। एक रोटी का गीला आटा कठोती में था। एक रोटी का आटा उसके हाथ में था। एक रोटी अंगारे पर थी। इतने में एक कुत्ता आया। जो कठोती में था उसको ले भागा। आदमी उसके पीछे दौड़ा। जो हाथ में था वह नीचे गिरकर धूल में मिल गया। पीछे से एक बिल्ली आई। वह सिकी रोटी ले गई। तवे पर रखी रोटी जल गई। अंगारों पर रखी रोटी भी जल गई। एक समाप्त, पांचों समाप्त। एक महाव्रत टूटा, पांचों टूटे।

वे साधक थे। साधना के लिए वे चले। सम्प्रदाय चलाने और मत बांधने की लालसा उन्हें छू तक नहीं गई थी। वे जब स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रुघनाथजी से अलग हुए तब सम्प्रदाय चलाने के लिए नहीं, किन्तु भगवान् महावीर की वाणी के अनुसार चलने के लिए। महापुरुष चले वही मार्ग बन जाए, यह एक बात है और मार्ग बनाने के लिए चले, यह दूसरी बात है। वे किसलिए चले, यह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार हैह्न

'म्हें उणा नै छोड्या जद पांच वर्ष तांई तो पूरो आहार न मिल्यो......। आहार-पाणी जाच नै उजाड़ में सर्व साध परहा जावता। रूंखरा री छायां आहार-पाणी मेल नै आतापना लेता। आथण रां पाछा गांव में आवता। इण रीते कष्ट भोगवता, कर्म काटता। म्हें या न जाणता, म्हारो मारग जमसी, नै म्हांमें यूं दीक्षा लेसी, नै यूं श्रावक-श्राविका हुसी। जाण्यो, आत्मा रा कारज सारसा, मर पूरा देसां, इम जाण नै तपस्या करता।.......'

वे चले और मार्ग बन गया। अनेक लोग उस मार्ग के पथिक बन गए। उन्होंने अपने जीवन-काल में १०५ शिष्य बनाये, जिनमें से कुछ शिष्य अलग भी हो गए या अलग कर दिए गए। फिर भी वे शिथिल मार्ग पर चलने को राजी नहीं हुए। वे अभय थे। लोकैषणा उन्हें कभी विचलित नहीं कर सकी। सत्य की साधना में उनका जीवन बीता। कटु सत्य भी सुधा-घूंट की तरह पीना पड़ा। किन्तु वे असत्य के लिए सत्य की बलि देने को तैयार नहीं हुए। भगवान् महावीर ने गोशालक पर मोहानुकम्पा की। इसे वे धर्म कैसे मान

सकते थे? वह बड़ी समस्या थी। क्योंकि भगवान् भगवद्‌दशा में वीतराग और सब दोषों से परे होते हैं। साधना-काल में उनमें भी राग-द्वेष की परिणति होती है किन्तु साधारण लोग अति भक्तिवश ऐसा नहीं सुन सकते। यद्यपि आचार्य भिक्षु भगवान् महावीर के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे। फिर भी वे चले तत्त्व-विश्लेषण करने, इसलिए उन्हें कटु सत्य की कड़वी घूंट पीनी पड़ी। उन्होंने भगवान् महावीर के लिए लिखाह्न

छह लेश्या हुंती जद वीर में, हुंता आठूं ही कर्म।
छद्मस्थ चूक्या तिण समै, मूरख थापै धर्म।।

इस स्पष्टोक्ति के लिए उन्हें अनेक कटूक्तियां सहनी पड़ीं, पर वे मार्गगत अवरोधों से विचलित नहीं हुए।

जो व्यक्ति प्रकाशमय बन जाता है, आत्म-केन्द्रित हो जाता है और जिसके लिए आगे-पीछे, पहले और बाद में, आत्मा के अतिरिक्त कुछ शेष रहता ही नहीं, वह नहीं जानता कि यातना और पीड़ा क्या होती है? भूख और प्यास क्या होते हैं? जो व्यक्ति यातनाओं को जानता है, यातनाओं का अनुभव करता है, वह वास्तव में यातना को सह नहीं सकता। कष्टों को जानने वाला, संवेदना करने वाला, कष्टों को सह नहीं सकता।

व्यंग्य-विनोद

आचार्य भिक्षु में विनोद की प्रखर और सहज मेधा थी। उनका विनोद मानस-गगन को आनन्दमयी ज्योत्सना से परिपूर्ण कर देता था। उनका विनोद मात्र मनोरंजन करने वाला और केवल बौद्धिक विलास नहीं था, वह था अन्तर् भाव को जागृत करने में सक्षम। उनके विनोद में मिलता है कबीर की सुधारवादी चेतना का उन्मुक्त उन्मेष। कुछ एक प्रस्तुत हैंह्न

१. आचार्य भिक्षु पीपाड़ में प्रवचन कर रहे थे। ताराचंदजी संघवी लोगों से बोलेह्नइनका प्रवचन मत सुनो, दाह लग जाएगी।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नदाह हरे वृक्षों को लगती है, सूखे लकड़ों को नहीं।

२. किसी ने आचार्य भिक्षु से पूछाह्नकुछ सम्प्रदायों के साधु परस्पर एक-दूसरे को असाधु कहते हैं। आप कृपा कर बताएं, कौन सच्चे हैं?

आचार्य भिचु बोलेह्नदोनों ही सच्चे हैं।

३. आचार्य भिक्षु ने पीपाड़ में चातुर्मासिक प्रवास किया। वे रात्रि में प्रवचन किया करते थे। एक दिन आप प्रवचन कर रहे थे, तब किसी विरोधी

व्यक्ति ने कहाह्नरात बहुत बीत चुकी है।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नदुःख की रात बड़ी लगती है।

४. एक बार आचार्य भिक्षु प्रवचन कर रहे थे। किसी व्यक्ति ने कहाह्नआप तो प्रवचन करते हैं और कुछ लोग अलग बैठकर आपकी निंदा करते हैं।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नझालर की झणकार सुनकर कुत्तों का स्वभाव भौंकने का होता है। उनमें इतना विवेक कहां होता है कि वे समझ लें, यह झालर किसी की शवयात्रा में बजाई जा रही है या किसी दूल्हे की वरयात्रा में।

शासक कम : गुरु अधिक

नियंत्रण और हृदय परिवर्तनह्नये एक नहीं हैं। नियंत्रण में प्रवृत्ति का निषेध होता है और हृदय-परिवर्तन में अन्तर्भाव का जागरण। नियंत्रण शासकत्व का प्रतीक है और हृदयह्नपरिवर्तन गुरुत्व का।

आचार्य भिक्षु धर्म शासन के शासक थे। धर्म शासन में भी नियंत्रण वर्जित नहीं होता, अपनी सीमा में अपेक्षित होता है। पर केवल नियंत्रण अपेक्षित नहीं होता, अपेक्षित होता है अन्तर्भाव का परिवर्तन, गुरुत्व का विकास।

आचार्य भिक्षु शासक और गुरुह्नदोनों थे। भारमलजी स्वामी नव युवा थे। आचार्य भिक्षु ने निर्देश दियाह्नतुम खड़े-खड़े समूचे उत्तराध्ययन सूत्र (लगभग २ हजार श्लोक) की पुनरावृत्ति किया करो।

भारमलजी स्वामी बोलेह्नगुरुदेव! मुझे खड़े-खड़े नींद आ जाये और गिर पडूं तो?

आचार्य भिक्षुह्नप्रमार्जन कर कोने में खड़े हो जाओ, पर पुनरावृत्ति खड़े-खड़े ही करनी है।

मुनि भारमलजी प्रतिलिपि किया करते थे। उस समय 'बरू' की कलम से प्रतिलिपियां की जाती थीं। मुनि भारमलजी कलम बनाना नहीं जानते थे। वे दूसरे साधुओं से कलम बनवाते थे। एक बार आचार्य भिक्षु ने कहाह्नतुम्हें दूसरों से कलम बनवाने का त्याग है। अब वे कलम बनाना स्वयं सीख गये।

मुनि हेमराजजी ने दशवैकालिक सूत्र कण्ठस्थ कर उत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ करना चाहा। तब आचार्य भिक्षु बोलेह्नतुम्हारा कण्ठ अच्छा है इसलिए तुम व्याख्यान कण्ठस्थ करो। जनता का कल्याण व्याख्यान से ज्यादा होगा।

मुनि हेमराजजी प्रतिलिपि किया करते थे। एक बार उन्होंने अपना लिखा हुआ पन्ना आचार्य भिक्षु को दिखाया। उसकी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं देखकर आचार्य भिक्षु बोलेह्नकिसान हल चलाता है। वह भी सीधा चलाता है। तुम्हारी रेखाएं कितनी टेढ़ी-मेढ़ी हैं। रेखाएं सीधी खींचा करो।

आचार्य भिक्षु की वाणी ने उनमें सीधी रेखाओं का कौशल जगा दिया।

गुरु कौशल की ज्योति पर राख का भार नहीं डालता किन्तु दबी हुई ज्योति को प्रकट कर देता है। उनकी एक वाणी अनेक सुषुप्त क्षमताओं को जगा देती है।

६. जागरूक जीवन

बुढ़ापे में यौवन

कुछ व्यक्ति यौवन में बूढ़े होते हैं, कुछ व्यक्ति बुढ़ापे में युवा। आचार्य भिक्षु चिर युवा थे। वे सत्तर वर्ष पार कर गये इसलिए अवस्था से वृद्ध बने, किन्तु आकृति से सदा युवा बने रहे। सामयिक सत्य का व्याख्याता बूढ़ा हो जाता है पर शाश्वत सत्य का व्याख्याता कभी बूढ़ा नहीं हो सकता।

जयाचार्य ने उनकी ७७ वर्षीय मुद्रा का जो वर्णन किया है वह युवक-मुद्रा का वर्णन हैह्

- ७७ वर्ष की अवस्था में भी आचार्य भिक्षु की सभी इन्द्रियां बलवान् और पुष्ट थीं, कोई इन्द्रिय हीन नहीं थी।
- गति तेज थी।
- कहीं स्थिरवास नहीं रहे।
- स्वयं गोचरी करते थे। भिक्षा के लिए जाते थे।
- उत्सर्ग (शौच) के लिए बाहर बहुत दूर जाते थे।
- खड़े-खड़े प्रतिक्रमण करते थे।
- अस्वस्थ और वृद्ध लोगों को दर्शन देने घर-घर जाते थे।
- शिष्यों को पढ़ाते थे। स्वयं अपने हाथ से प्रतिलिपि कर उन्हें समझाते थे।
- आने वाले लोगों से तत्त्व-चर्चा करते थे।
- ग्रन्थ-रचना करते थे।
- जनता के बीच प्रवचन करते थे।

अन्तिम अवस्था में भी उनकी मुद्रा मनोरम, मनोहर और आकर्षक थी। उसे देखकर चित्त आह्लाद से भर जाता था।

एक साधक के लिए बुढ़ापा अभिशाप नहीं किन्तु आनन्द का स्रोत है।

आचार्य भिक्षु चातुर्मासिक प्रवास के लिए सिरियारी पधारे। उस समय उनका शरीर पूर्ण स्वस्थ था। श्रावण मास के अन्तिम सप्ताह में कुछ अस्वस्थ से हुए। दस्त की साधारण-सी शिकायत रहने लगी। औषधि ली, पर कोई लाभ नहीं हुआ। श्रावणी पूर्णिमा के दिन वे स्वयं गोचरी गए और औषधि लाए। भाद्रव मास के कृष्ण पक्ष में अस्वस्थता बनी रही। पर्युषण पर्व आ गया। प्रातःकाल, मध्याह्न और रात्रिह्नतीनों समय आचार्य भिक्षु प्रवचन करते। संवत्सरी (भाद्रव शुक्ला पंचमी) के दिन उपवास किया। प्यास बहुत लगी। उसे समभाव से सहा।

छठ का दिनह्नथोड़ा आहार लिया और दवा भी ली। तुरन्त वमन हो गया। तत्काल तीन आहार का त्याग कर दिया।

सप्तमी का दिनह्नथोड़ा आहार लिया और तुरन्त आहार का त्याग कर दिया।

अष्टमी का दिनह्नथोड़ा आहार लिया और तत्काल त्याग कर दिया।

मुनि खेतसीजी ने प्रार्थना कीह्नआप आहार का तुरन्त त्याग न किया करें। आचार्य भिक्षु बोलेह्नशरीर क्षीण हो रहा है, वैराग्य बढ़ना ही चाहिए। श्रावक बिरधोजी ने आहार लेने की प्रार्थना की।

आचार्य भिक्षु बोलेह्नआहार की इच्छा नहीं है।

नवमी का दिनह्नआचार्य भिक्षु आहार का त्याग करने लगे, तब खेतसीजी ने आग्रह कियाह्नमेरे हाथ से कुछ आहार लें। उनके आग्रह को स्वीकार कर अल्प-सा आहार ले तुरन्त त्याग कर दिया।

दसमी का दिनह्नभारमलजी स्वामी के अनुरोध को स्वीकार कर केवल चालीस चावल और मोठ ले तुरंत आहार का त्याग कर दिया।

ग्यारस का दिनह्नदवा और जल के सिवाय शेष आहार का त्याग कर दिया और बोलेह्नआज से आहार लेने का भाव नहीं है।

यह एक निदर्शन हैह्नजागरूकता का और ममत्व-विसर्जन का। वे जीवन के अंतिम क्षण तक जागरूक बने रहे।

अन्तिम संदेश

बीज को फल तक पहुंचने में लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है। उसके बिना फल में रस देने की शक्ति नहीं आती। साधना का बीज सिद्धि की दिशा में

बढ़ता है तब अनुभव का फल पक जाता है। आचार्य भिक्षु ने अन्तिम समय में अनुभव से पगी वाणी में जो कहा, वह इतना सरस और मोहक है कि उसका रसास्वादन करने वाला व्यक्ति परम तृप्ति का अनुभव करने लग जाता है।

भादवा सुदि चतुर्थी, संवत् १८६० (संवत्सरी से पहला दिन) आचार्य भिक्षु ने श्रावकों की परिषद् के बीच साधुओं को आमंत्रित कर कहा‒

१. तुम लोग मुझे जिस दृष्टि से देखते रहे, उसी दृष्टि से भारमल को देखना। जैसे मुझे मानते रहे वैसे ही भारमल को मानना।

२. मैंने भारमल को योग्य समझकर गण का भार सौंपा है। उसमें शुद्ध साधुत्व की साधना है। वह सब साधु-साध्वियों का नायक है। उसकी आज्ञा का उल्लंघन मत करना।

३. अरिहन्त की आज्ञा में रहे, उसे साधु मानना। आज्ञा का उल्लंघन कर प्रतिकूल व्यवहार करता है, उसका पक्ष मत लेना।

४. गुरु की आज्ञा अरिहन्त की आज्ञा है। जो साधु-साध्वी भारमल की आज्ञा में रहे, शुद्ध आचार की अनुपालना करे, उनकी उपेक्षा मत करना। उनकी सेवा-भक्ति करना।

५. कोई व्यक्ति कर्मयोग से अरिहन्त और सद्गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर स्वछन्द हो जाता है, उसे वन्दना मत करना, उसका विश्वास मत करना और उसे साधु मत मानना। उसे चार तीर्थ में मत गिनना।

६. कोई साधु-साध्वी गण में रहते हुए दोष का सेवन करता है, असत्य बोलता है, उसका लिहाज मत करना। यदि वह प्रायश्चित्त न ले तो गण से अलग कर देना।

७. शिथिलाचारी साधुओं से दूर रहना, उनका सम्पर्क मत करना, उनसे परिचय मत बढ़ाना।

८. सब साधु-साध्वियां परस्पर विशेष सौहार्द रखना।

९. योग्यता देखकर दीक्षा देना। जिस-तिस को दीक्षा मत देना।

१०. शिष्यों की ममता मत रखना। जो शुद्ध आचार पाल सके, उसी को दीक्षित करना। अस्थिर मन वाले को गण में सम्मिलित मत करना।

११. पांच समिति और तीन गुप्ति में पूरी सावधानी रखना।

१२. पौद्गलिक पदार्थों पर ममता मत करना, समता का विकास करना।

१३. एक दूसरे के प्रति राग-द्वेष मत करना, दलबन्दी मत करना।

केवल आत्मा के लिए समर्पित

आचार्य भिक्षु अध्यात्म की गहराई तक पहुंचे हुए संत थे। उनका ध्यान केवल आत्मा पर टिका हुआ था। जो आत्म-द्रष्टा होता है, उसमें ममत्व नहीं होता। जिसमें ममत्व होता है, वह आत्म-द्रष्टा नहीं हो सकता। आचार्य भिक्षु ने स्वयं ममत्व का विसर्जन किया और अपने शिष्यों को भी ममत्व विसर्जन की प्रेरणा देते रहे।

१. एक दिन मुनि खेतसीजी को अतिसार हो गया। आचार्य भिक्षु उनकी परिचर्या में बैठे थे। खेतसीजी कुछ स्वस्थ हुए उन्होंने स्वामीजी से कहाह्नसती रूपांजी का विशेष ध्यान रखना है। आपने कहाह्नबहन की चिंता मत करो। तुम अपना मन समाधि में रखो।

२. आचार्य भिक्षु ने अंतिम समय में ऋषि रायचन्दजी से कहाह्नतुम बुद्धिमान बालक हो। मेरे लिए मोह मत करना। निर्मल ध्यान का प्रयोग करते रहना।

ऋषि रायचंदजी बोलेह्नआप उच्च गति में जा रहे हैं, समाधि मरण कर रहे हैं, फिर मैं मोह क्यों करूंगा?

आत्म-आलोचन और खमतखामणा

विनम्रता, ऋजुता, लघुता और सहिष्णुताह्नये महानता के चार स्तम्भ हैं। महान् वह होता है, जो आत्म-निरीक्षण, आत्मालोचन और आत्म-परिष्कार करता है। आचार्य भिक्षु प्रारम्भ से ही महान् थे। अन्तिम समय में उनकी महानता और अधिक निखर गई।

संवत्सरी का महान् पर्व सम्पन्न हुआ। आचार्य भिक्षु ने आत्मालोचन किया और सबके साथ खमतखामणा कर अपने आप को हल्का बना लिया। उन्होंने कहाह्न

- प्राणीमात्र से राग-द्वेष की लहर के लिए खमतखामण करता हूं।
- कुछ शिष्य सुविनीत हुए और कुछ अविनीत। उन्हें कठोर वचन से शिक्षा दी, उनसे खमतखामणा करता हूं।
- कुछ श्रावकह्नश्राविकाओं को भी कठोर वचन से शिक्षा दी, उसके लिए खमतखामणा करता हूं।

- चार तीर्थ संचालन करने के लिए शिक्षाएं दी, उससे किसी को अप्रिय लगा हो तो खमतखामणा करता हूं।
- स्थानकवासी साधुओं तथा अन्य साधुओं से अनेक बार चर्चाएं कीं। उनका नाम ले-लेकर कहाह्नमैं उन सबसे खमतखामणा करता हूं।
- अपने गण से निकले, अनुकूल या प्रतिकूल रहने वाले, साधु-साध्वियों का नाम ले-लेकर कहाह्नमैं उन सबसे खमतखामणा करता हूं।
- गण से निकले हुए चन्द्रभाणजी और तिलोकचन्दजी उस समय थली प्रदेश में थे। उनसे खमतखामणा किया और साधुओं से कहाह्न उनसे बहुत काम पड़ा है, इसलिए वे जब मिलें तब मेरी ओर से खमतखामणा कह दें।

इस प्रकार अपनी अन्तर् आत्मा को खोल उन्होंने सब शल्यों के हावों को भर दिया। वे निःशल्य होकर अंतिम क्षण की प्रतीक्षा करने लगे।

७. अनशन और समाधि-मरण

अनशन

जीवन का मूल्य मृत्यु के मूल्य से जुड़ा हुआ हे। जिसकी मृत्यु समाधिपूर्ण होती है, उसके जीवन का मूल्य बढ़ जाता है। जो अन्तिम चरण में असफल होता है, जिसकी मृत्यु असमाधि के क्षणों में होती है, उसके जीवन का मूल्य भी कम हो जाता है।

आचार्य भिक्षु ने समाधि का जीवन जीया और समाधि की मृत्यु का वरण किया। जब मृत्यु के लक्षण प्रकट होने लगे, तब वे अधिक जागरूक बन गए। सं० १८६० सिरियारी गांव में चातुर्मासिक प्रवास। प्रवास स्थल कच्ची हाट तथा पक्की हाट। भाद्रव शुक्ला १२ का दिन। आचार्य भिक्षु ने बेलाह्नदो दिन की तपस्या शुरू की। वे कच्ची हाट में लेटकर विश्राम कर रहे थे। ऋषि रायचंदजी उनके पास आकर बोलेह्नस्वामीजी! कृपा कर दर्शन दें। यह सुन आचार्य भिक्षु ने आंखें खोली और उनके सिर पर हाथ रखा। ऋषि रायचंदजी बोलेह्नस्वामीजी!शरीर का पराक्रम क्षीण हो रहा है। यह सुनते ही स्वामीजी उठ बैठे, जैसे कोई सोया सिंह जागा हो। उन्होंने तत्काल अपने उत्तराधिकारी भारमलजी तथा सतजुगीजी को बुलाया। वे तत्काल उपस्थित हुए। आचार्य भिक्षु ने अरिहन्त और सिद्ध भगवान् को नमोत्थुणं (शक्रस्तुति) के पाठ द्वारा नमस्कार किया और श्रावक और श्राविकाओं की उपस्थिति में उच्च स्वर में बोलेह्नमैं आजीवन तीन आहार (पानी के अतिरिक्त शेष आहार) का प्रत्याख्यान करता हूं।

जब आचार्य भिक्षु ने अनशन किया तब दिन का अन्तिम दुघड़िया चल रहा था, दो घड़ी दिन शेष था। समाधि-मृत्यु की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जुड़ गई।

अतीन्द्रिय ज्ञान

बुद्धि का विकास दुर्लभ है। उससे भी दुर्लभ है प्रतिभा (औत्पत्तिक ज्ञान

अथवा प्रातिभ ज्ञान) का विकास। दुर्लभतम है अतीन्द्रिय ज्ञान की उपलब्धि। आचार्य भिक्षु ने पूर्वजन्म में कोई विलक्षण साधना की थी, इसलिए बचपन से ही उनमें बुद्धि और प्रतिभा का विकास हो गया। प्रतीत होता है, जीवन के अन्तिम समय में उन्हें अतीन्द्रिय ज्ञान उपलब्ध हो गया। सं० १८६० भाद्रव शुक्ला त्रयोदशी, सिरियारी गांव। दिन का दूसरा प्रहर आधा बीता। आचार्य भिक्षु ध्यान-मुद्रा में स्थित थे। उन्होंने अचानक आंखें खोलीं और परिषद् के बीच साधुओं को आमंत्रित कर कहा‍ह्न

१. शहर में त्याग प्रत्याख्यान कराओ।

२. साधु आ रहे हैं, सामने जाओ।

३. साध्वियां आ रही हैं।

४. चौथी बात इतनी धीमे स्वर में कही, जो सुनी नहीं जा सकी।

गुलोजी लुणिया ने कहाह्नस्वामीजी का मन साधु-साध्वियों में अटका हुआ है। भारमलजी स्वामी ने स्वामीजी से कहाह्नआप किसी में मन मत रखना।

एक मुहूर्त्त बीता। पाली से अचानक दो संतह्नमुनि वेणीरामजी तथा कुशालजी आ गए। उन्होंने वंदना की और आचार्य भिक्षु ने उनके सिर पर हाथ रखा।

दो मुहूर्त्त बीते। खैरवा से तीन साध्वियां बखतूजी, झूमांजी तथा डाह्यांजी आईं।

अब सबको लगाह्नआचार्य भिक्षु ने अतीन्द्रिय ज्ञानह्नअवधिज्ञान के आधार पर बताया था। मन में जिज्ञासा जागी, पर पूछने का समय बीत गया। रहस्य रहस्य ही रह गया।

मृत्यु का क्षण : सार्थकता की अनुभूति

चाह होना स्वाभाविक मनोवृत्ति है। वह आश्चर्य है, जिसके मन में चाह न रहे। आदमी अधूरे सपनों को साथ लिए मरता है। ऐसा व्यक्ति जीवन्त आश्चर्य होता है, जिसे मरते समय अधूरेपन की अनुभूति न हो। बहुत लोग व्यर्थता की अनुभूति लिए मरते हैं। वह व्यक्ति जीवन्त आश्चर्य होता है, जिसे मृत्यु के क्षण में धन्यता की अनुभूति हो।

आचार्य भिक्षु उन विरल व्यक्तियों में से थे, जो मृत्यु के क्षण में अपने आपको कृतकृत्य अनुभव कर रहे थे। उन्होंने अपने शिष्यों को संबोधित कर कहाह्न

'हम अब परभव में जा रहे हैं। मृत्यु सामने है, पर मुझे मरने का कोई भय नहीं है।'

'मेरे मन में बहुत हर्ष है। मैंने बहुत लोगों को सम्यक्त्व का बोध दिया है। बहुत लोगों को चरित्र की आराधना में लगाया है। बहुत लोगों को श्रावक धर्म की आराधना में लगाया है।'

'मैंने सत्य को प्रकट करने के लिए अनेक ग्रन्थ रचे हैं। अनेक लोगों के मानस में ज्ञान की ज्योति जलाई है। मेरे मन में कोई चाह नहीं है, कोई कमी नहीं है।'

'मैं परम समाधि के साथ प्रयाण कर रहा हूं। केवल एक बात कहना चाहता हूंह्नतुम सब निर्मल रहना, मोह मत करना, अर्हत् वाणी की आराधना करना, जिससे तुम शीघ्र मुझसे मिल सको।'

महाप्रयाण

समाधि-मृत्यु की कुछ विशेषताएं होती हैं। आचार्य भिक्षु लेटे हुए थे। साधुओं ने प्रार्थना कीह्नआप चाहें तो बिठा दें। उन्होंने स्वीकृति दी। साधुओं ने सहारा देकर उन्हें बिठाया। वे जिनमुद्राह्नपद्मासन की मुद्रा में बैठे। जब वे पद्मासन की अवस्था में बैठे थे तब पूर्ण स्वस्थ, समाधिस्थ प्रतीत हो रहे थे। वे ध्यानमग्न थे। साधु-साध्वियां, श्रावक और श्राविकाएं उनके चारों ओर उपासना की मुद्रा में बैठे थे।

दर्जी आकर बोलेह्नहमारा काम पूरा हो गया हे, बैकुण्ठी तैयार है। उन्होंने सूईयां अपनी पगड़ियों में खोंसी। तत्काल ध्यान-मुद्रा में बैठे आचार्य भिक्षु महाप्रयाण कर गए। मुनिश्री वेणीरामजी ने इसका आंखों देखा वर्णन इन शब्दों में चित्रित किया हैह्न

'बैठा हुआ तिण अवसरे, ध्यान आसन श्रीकार।
जाणै के जिणजी विराजिया, न जाणी असाता लिगार।।
तेरे खंडी त्यारी हुई, जाणक देव विमान।
तंतो तंत इसड़ो मिल्यो,पूज बैठाई छोड्या प्राण।।'

आचार्य भिक्षु का महाप्रयाण संवत् १८६० भाद्रव शुक्ला १३ मंगलवार, दिन का तीसरा प्रहर, ७७ वर्ष की अवस्था में हुआ।

भिक्षु और भारीमाल

आचार्य भिक्षु के प्रति भारीमालजी सर्वात्मना समर्पित थे। वे आचार्य

भिक्षु के हाथों दीक्षित हुए और उन्हीं के पास शिक्षित हुए। बचपन से लेकर स्वामीजी की समाधि-मृत्यु तक उनका अनुराग अखण्ड और अविच्छिन्न रहा एक कहावत चल पड़ीह्न**'ऐसी कीजै प्रीतड़ी, जैसी भिक्खू भारीमालो।'**

भगवान् महावीर और गौतम में जो संबंध था, उसी की पुनरावृत्ति हुई आचार्य भिक्षु और भारीमाल में। एक बार गौतम निराश हो गए तब भगवान् महावीर ने उन्हें आश्वासन दिया था। आचार्य भिक्षु के समाधि-मृत्यु के अवसर पर भारीमाल का मन खिन्न हो गया। वे बोलेह्नगुरुदेव! अब आपका विरह हो रहा है। कितना दुःसह होगा यह मेरे लिए।

आचार्य भिक्षु ने आश्वासन की भाषा में कहाह्नतुम चिन्ता मत करना। संयम का भलीभांति पालन करना। तुम मृत्यु के बाद देव बनोगे और महाविदेह क्षेत्र में मुझसे ज्ञानी और महान् साधुओं के दर्शन कर पाओगे।

समाधि-मरण : समाधि का वातावरण

ममता और समताह्नये विभाजन रेखाएं हैं असमाधि और समाधि की। जो ममता के साथ मरता है, वह असमाधि मरण से मरता है। जिसके जीवन में समता होती है, उसकी मृत्यु भी समाधि के क्षणों में होती है। आचार्य भिक्षु समता के महान् साधक थे। उन्होंने ममता पर विजय पाई। उनकी मृत्यु पूर्ण समाधि अवस्था में हुई। समाधि से मरने वाला पीछे वातावरण में समाधि छोड़ जाता है।

वे महाप्रयाण कर गए। कुछ समय बाद साधुओं ने उनके शरीर का व्युत्सर्ग किया और अर्हत् एवं सिद्ध की स्मृति कर कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठ गए।

आचार्य भिक्षु के महाप्रयाण का समाचार सुन हजारों श्रावक इकट्ठे हो गए। ग्रामवासी लोग उनके शरीर को बैकुण्ठी में बिठा दाह-संस्कार के लिए ले गए। पीछे हजारों व्यक्ति प्रयाण-यात्रा में चल रहे थे। गांव के बाहर नदी के तट पर उनका दाह-संस्कार किया गया। उनका समाधि-स्थल आज भी हजारों-हजारों लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ मौनभाव से समाधि का सृजन कर रहा है।